भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-ग्रन्थागार

"णाणं पयासयं"

कृपया—

(१) मैले हाथोंसे पुस्तकको स्पर्श न कीजिये। जिल्दपर काग़ज़ चढ़ा लीजिये।

(२) पन्ने सम्हाल कर उलटिये। थूकका प्रयोग न कीजिये।

(३) निशानीके लिये पन्ने न मोड़िये, न कोई मोटी चीज़ रखिये। काग़ज़का टुकड़ा काफ़ी है।

(४) हाशियोंपर निशान न बनाइये, न कुछ लिखिये।

(५) खुली पुस्तक उलटकर न रखिये, न दोहरी करके पढ़िये।

(६) पुस्तकको समयपर अवश्य लौटा दीजिये।

"पुस्तकें ज्ञानजननी हैं, इनकी विनय कीजिये"

सुशीला-स्मृति-सीरीज़ की आठवीं भेंट

भाग्य

[वीर-रस-पूर्ण, पौराणिक-नाटक]

लेखक

श्री 'भगवत्' जैन

प्रकाशक

श्री भगवत्-भवन, ऐत्मादपुर (आगरा)

प्रथमवार

[अगस्त, १९४३]

मूल्य

सवा रुपया

पात्र-पात्री-परिचय

१ श्रीपाल	चम्पापुर के राजा
२ प्रधान मंत्री	महाराज श्रीपाल के मंत्री
३ वीर दमन	महाराज श्रीपाल के चाचा
४ प्रधान मंत्री	वीर दमन के मंत्री
५ पहुपाल	उज्जयिनी के राजा
६ प्रधान मंत्री	पहुपाल के मंत्री
७ धवलराय	कोशाम्बी के धन कुबेर
८ नेक राय |	धवलराय के प्रधान
९ बद राय |	सलाहकार
१० कनक केतु	हंस द्वीप के राजा
११ भू-मण्डल	कुंकुम द्वीप के राजा

सैनिक नं० १; नम्बर २; गृहस्थाचार्य; प्रहरी; राजदूत; लुटेरों का नायक, सेनापति, पुरोहित, कोढ़ी; वणिकदल; वणिक नं० १-२-३; लुटेरों का समूह, नैपथ्य में कुन्द प्रभा और नागरिक! जल्लाद वगैरह।

स्त्री-पात्र

१ मैना सुन्दरी	महाराज पहुपाल की राजकुमारी
२ रयन मंजूषा	महाराज कनककेतु की राजकुमारी
३ गुण माला	महाराज भूमण्डल की राजकुमारी
४ दासी	गुणमाला की दासी (सेविका)

सखि मण्डल, और देवियाँ इत्यादि।

मुद्रक—राजनरायन अग्रवाल बी० ए०, मौडर्न प्रेस, नमक मण्डी, आगरा

अपने सम्बन्ध में—

यह मैं नहीं कहना चाहता कि इसे लिखने में मैंने बहुत परिश्रम किया है। इसलिए कि मैं क़तई परिश्रमी नहीं हूँ। मस्तिष्क पर बग़ैर बोझ डाले जितना लिखा जा सकता है, उतना ही मैं लिखने का अभ्यासी हूँ। पर, इसे लिखते समय अलबत्त मैंने यह महसूस किया कि मौलिक लिखने से छाया लेकर लिखना या प्रामाणिक-रूप से अनुसरण करना कहीं परिश्रम-साध्य कार्य है।

यह जैन-पुराण प्रसिद्ध कथानक है। कई एक नाटक इस पर लिखे भी जा चुके हैं। पर, वे सभी साम्प्रदाय के संकीर्ण-क्षेत्र से आगे नहीं बढ़े हैं। मेरा ख़्याल है—यह इस दृष्टि से अधिक सामयिक है। जहाँ तक हुआ है इसे सार्वजनिक बनाने का प्रयत्न किया है। कथानक की प्राय: सभी घटनाएँ देने की चेष्टा अवश्य की है, किन्तु स्टेज करने वालों की सुविधा-असुविधा का ध्यान पहले रक्खा है। उदाहरण में लीजिए—भड़ई! भड़ई के सीन से न केवल नायक का मान-मर्दन ही होता है, जो कि अप्रभावक है; वरन ड्रामा-डाइरेक्टर के आगे नक़ालों और स्त्री-पात्रों की एक लम्बी सूची आ जाती है। अभिनय में ही सही, लोग भाँड-पन कर ज़रूर सकते हैं, पर भाँड कहलाने को तैयार नहीं हो सकते।

इसी तरह कम से कम स्त्री-पात्र, चुने हुए आधुनिक ढंग के सम्वाद, और थोड़े समय में समाप्त हो सकने योग्य संक्षिप्त प्लाट आदि उन सभी बातों को पहले कुछ सोचा, बाद को लिखा गया है। जिन्हें मंच पर उतारने के पहले परखा जाता है। सीन-सीनरियाँ भी हैं, जो विशेष कठिन नहीं हैं। नाटक की स्टेज सफलता बहुधा इन्हीं पर मुनहस्सिर होती है, क्योंकि यह दर्शकों में चमत्कार भरती हैं। दूसरे शब्द में यह नाटक का श्रृङ्गार है।

साथ ही, कुछ वे बातें भी शायद आपको इसमें मिल सकें, जो नाट्य-साहित्य की कसौटी पर कसी जाया करती हैं। सही है कि आज इस ढंग के नाटक लिखने का चलन कम रह गया है, यह पुरानी पारसी-कम्पनियों की देन है। लेकिन यथार्थ-वाद की शपथ लेकर यह कहा जा सकता है कि भले ही इस शैली को साहित्यिक न कहा जाय, किन्तु स्टेज पर यह जो अपना प्रभाव छोड़ती है, वह मनन-शील, साहित्यिक शैली की नाटिकाएँ नहीं। क्योंकि दर्शक-समुदाय प्राय: मध्यम-बुद्धि का रहता है; जो साहित्यिक-रस का समुचित स्वाद नहीं ले सकता।

सामाजिक, राष्ट्रीय दो नाटकों के बाद यह मेरा तीसरा पौराणिक नाटक है। और इसमें मुझे बनी हुई पगडंडी पर साधना-पूर्वक चलना पड़ा है। हुआ होगा, कि पैर इधर-उधर खिसके हों। अत: मैं अपने दोषों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। इसलिए और भी कि लिख लेने के बाद फिर मुझसे अपनी कृति के सिंहाव-लोकन की मुसीबत नहीं खरीदी जाती। जो कि रचना को परि-माजित और पुष्ट करने के लिए आवश्यक है। स्नेही—

भादों बदी ५ सं० २००० 'भगवत्'

प्रमुख सीन-सीनरियाँ—

कोढ़ियों का पैन्ट; विवाह-मंडप; उपवन; समुद्र; जहाज़; जहाजों के क़ाफ़िले का चलना; देव-मंदिर का द्वार; आँधी की आवाज़; रात का वक्त; दीपक; समुद्र की गर्जन; तूफ़ान; मुँह से खून तथा आग निकलना; अ-दृश्य प्रहार होता दीखना; देवियों का ज़मीन से प्रगट होना; श्रृंगार-भवन; बड़ा आइना; खूँटी पर वस्त्रों का टँगा रहना, तथा गिरना; श्रृंगार-दान; फाँसी का दृश्य; घन्टे की आवाज़; पलंग; शिविर।

भाग्य

[भाव-पूर्ण पौराणिक-नाटक]

पहला अङ्क

पहला दृश्य

[स्थान—रंगभूमि, सखी-मण्डल की सम्मिलित प्रार्थना ! टेब्ला !

गायन

घट-घट जीवन-ज्योति जगादो,
मंगलमय भगवान !
बुझ जाए दाहक भव-ज्वाला !
जागे एक नया-उजियाला !!
अपने और पराये की हम,
पा जाएँ पहिचान !
घट-घट जीवन..........!
अपनी ताक़त को अपनाएँ !
अपने को हम भूल न जाएँ !!
'भगवन्' धर्म-समर में हँस-हँस,
हो जाएँ बलिदान !!
घट-घट जीवन..........!

[प्रस्थान]

—: पट-परिवर्तन :—

दूसरा दृश्य

[स्थान—चम्पापुर का राज दर्बार, महाराज श्रीपाल सिंहासन पर विराजे हुए हैं । मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि राज-कर्मचारी सब अपने-अपने स्थान पर बैठे हैं । सबके शरीर कोढ़-व्याधि से पूर्ण हैं । खून पीव बह रहा है, जगह-जगह पट्टियाँ बँधी हैं, अनेक खुले घाव हैं । महाराज श्रीपाल का एक हाथ टेढ़ा पड़ गया है । पैरों में लँगड़ापन है । वेदना से सब के मुँह उदास हैं ।]

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) भाग्य ! बस, यही कह कर सन्तोष करना पड़ेगा । जो हमारी ताक़त से बाहर चला जाता है, चेष्टा करने पर भी जिसे हम पा नहीं सकते । उसे भाग्य पर छोड़ देते हैं । भाग्य वह है, जिसके पैरों में दुनिया लोट रही है । दुनियावी सारी ताक़तें जिसे पराजित करने में मजबूर हैं । एक करोड़ योद्धाओं की ताक़त रखने वाला (बाँह उठा कर) यह शरीर आज भाग्य की बदौलत कोढ़ जैसे भयंकर रोग का शिकार हो रहा है । जगह-जगह से फटा जा रहा है, खून-पीव, और दुर्गन्धि से शराबोर हो रहा है देव-देवाँगनाओं द्वारा प्रशंसा पाने वाला रूप, आज मक्खियों मे घिरा हुआ, घृणा की चीज़ बन रहा है ।

यही है भाग्य जिसने राम को वन-वन फिराया था ।
यही है भाग्य जिसने अंजना को दुख दिखाया था ॥
इसी की ठोकरों से द्वारिका में जल उठी ज्वाला ।
कि नारायण मरे तो था न कोई देखने वाला ॥

मन्त्री—(वेदना से कराहते हुए) मानता हूँ महाराज ! कि दुष्ट भाग्य का भोग, भोगना ही पड़ेगा ।

सितमगर ! जिसके ऊपर ज़ालिमाना ज़ुल्म ढाता है।
उसे मजबूरियों के क़ैदखाने में फँसाता है॥
तरसखाना नहीं सीखा है, जिसने दीन-दुखियों पर—
रुलाने या सताने में ये, ताक़त आज़माता है॥

श्रीपाल—ग़लत ! ग़लत ख़याल करते हो, प्रधान-मन्त्री ! दर-असल भाग्य का कोई दोष नहीं। दोष है—हमारा ! हम जो अच्छा-बुरा करते हैं, वही एक दिन भाग्य बन कर हमारे सामने आता है। वह टल नहीं सकता। उसके आगे हमें हार माननी ही होगी।

सहो कष्टों को हँस-हँस कर, न रोने में रिहाई है।
मुसीबत यह अनेकों पर, अनेकों बार आई है॥
नहीं तुम पर नई आफ़त, जो यों बेज़ार होते हो ?
भलाई वीरता है, और कायरता बुराई है॥

मन्त्री—(निराशा-भरे स्वर में) लेकिन अब यह वेदना तो असह्य बनती जा रही है—महाराज ! दवाएँ गुण छोड़ बैठी हैं। जितना-जितना उपचार, जितनी-जितनी तीमारदारी की जाती है, मर्ज़ बढ़ता चला जाता है। शरीर गल-गल कर गिरने के लिए तैयार हो रहा है। बदबू के मारे न दिन चैन पड़ता है, न रात। आँखों की नींद, पेट की भूख, जीवन की खुशी सब मौत की ओर टकटकी लगाए देख रही हैं।

श्रीपाल—(हँस कर) प्रधान-मन्त्री ! तुम्हें वेदना ने पथ-भ्रष्ट कर दिया है। तुम अपनी ही पीड़ा में उलझ कर, भूल चुके हो कि तुम्हारे कन्धों पर कितनी ज़िम्मेदारी है। तुम्हें स्वार्थ ने कर्त्तव्य की अवहेलना के लिए लाचार कर दिया है। नहीं, मेरी दशा को देख कर तुम्हें सन्तोष होना चाहिए—ज्ञान होना चाहिए।

(गंभीर होकर) लेकिन तुम इतने अज्ञान हो रहे हो, कि प्रजा के सुख-दुख से भी बे खबर हो बैठे हो। नहीं देख रहे कि प्रजाजन हम लोगों के सबब कितनी परवशता का मुक़ाबिला कर रहे हैं। वे एक बा-अदब बेटे की तरह मुसीबतों को झेलते हुए भी, मुँह पर एक शब्द लाने में हिचकते हैं। लेकिन उनकी पुकारें, दर्द-भरी आवाजें, मेरे कानों में आ रही हैं। दरबार की एक-एक ईंट उनकी आहों से गूँज रही है। क्या यह सब-कुछ तुम्हें सुनाई नहीं देता ? सुनो, सुनो—ज़रा एक दया-शील राज-कर्मचारी के कानों से सुनो।

[सब चुप हो जाते हैं, नेपथ्य से पुकारें आती हैं—करुण और दीन !]

पति—एक बार, दो बार हज़ार बार कह चुका, कि नहीं खाता। भूख नहीं है, बदबू के मारे दिमाग़ फटा जा रहा है। लेकिन फिर वही, खाना ! खाना !! कहता हूँ—फेंक दो थाली। (थाली गिरने की आवाज़)

स्त्री—(रोते हुए) इस तरह कितने दिन गुज़र चलेगी—प्राणनाथ ! कल भी कुछ नहीं खाया ! और आज....!

× × × ×

माँ—ले, ले खा तो मेरे लाल ! देख कितनी अच्छी मिठाई बना कर लाई हूँ—तेरे लिए।

पुत्र—मुझे नहीं भाती माँ ? मेरा जी मचला रहा है। बास आ रही है, माँ ! चलो कहीं दूर।

माँ—मेरे लाल का मुँह तो देखो, कैसा पीला पड़ गया है—मारे भूख के ! ......ले एक कौर खाले—एक........।

× × × ×

मित्र—कहाँ चले दोस्त ?

दूसरा मित्र—इस बदबू से दूर, जहाँ जगह मिले। तमाम-घर

परेशान है। कै कर रहे हैं सब लोग! खाना-पीना छूट गया है। क्या तुम नहीं चलोगे? हमारा तो सारा मुहल्ला खाली हो चुका।

× × × ×

(नैपथ्य में बोलने के लिए छह मनुष्य ही होना चाहिए, दो से काम निकालना ठीक नहीं)

श्रीपाल—(सतेज होकर) सुना? देखा, प्रजा कितने संकट में होकर गुज़र रही है। कितनी पराधीनता, कितनी तकलीफ़ें उठा कर भी चुप है।

मन्त्री—(सविनय) सही कह रहे हैं प्रजापति! लेकिन यह खयाल न कीजिए—सम्राट्! कि हम लोग अपनी ज़िम्मेदारी को भूल चुके हैं। यक़ीन कीजिए कि हम प्रजा की पुकारों से बे-खबर नहीं रहे हैं। उनके दुख-दर्द का हमें उतना ही खयाल रहा है जितना कि अपनी वेदनाओं का।

समुचित है पशु कहना उसको, हरगिज़ न उसे इन्सान कहो।
पद पाकर जो मग़रूरी हो, सेवा पर जिसका ध्यान न हो॥

श्रीपाल—फिर मुझ तक उनकी पुकार, उनकी समस्या के न आने का कारण?

मन्त्री—(सादर) कारण? कारण यह है कि प्रजा के संकट दूर करने का कोई उपाय नहीं है। उनकी समस्या का कोई समाधान नहीं है। जब राजा कष्ट में है, तो प्रजा सुखी नहीं रह सकेगी। आपके संकट का दूर होना ही उनके दुःख-दर्दों का दूर होना है। इसलिए कि राजा और प्रजा दोनों का भाग्य एक ही डोरे में बँधा है।

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर से) ठीक कह रहे हो प्रधान मन्त्री।

लेकिन मुझे बर्दाश्त नहीं, कि मेरे कारण मेरी प्रजा दुख उठाए। अपने नौनिहालों को भूखा-प्यासा सुलाने के लिए मजबूर हो। पति-पत्नी के आनन्दमय-जीवन में कलह का हाहाकार मचे, प्रजा नगर छोड़ कर भाग जाने के लिए तैय्यार हो। (रुक कर) मैंने इसके लिए एक उपाय सोच लिया। मैं मानता हूँ, कि वह उपाय तुम लोग मुझे नहीं बता सकते थे।

मन्त्री—(साश्चर्य) क्या तय किया है, महाराज ने ?

श्रीपाल—(सरलता के साथ) सिंहासन छोड़ कर, वन में निवास करना।

मन्त्री—(उठकर ताज़ुब से) ऐसा ?

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) हाँ ! प्रजा की भलाई के लिए।

मन्त्री—(भोलेपन के साथ) लेकिन सम्राट् ! ऐसा तो नहीं देखा गया, कि प्रजा की तकलीफ़ के सबब, राजा ने सिंहासन छोड़ना तय किया हो।

श्रीपाल—(दृढ़-स्वर में) तो क्या राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने स्वार्थ में भूला रहे और प्रजा के संकट की ओर से आँख मीच ले ? नहीं, राजा का कर्त्तव्य प्रजा-पालन है। राजा, प्रजा का पिता होता है। उसके हृदय में प्रजा के लिए, पिता के जैसा प्रेम, पिता के जैसी ममता, और पिता के जैसी हमदर्दी होनी चाहिए। प्रजा की भलाई के लिए बड़े से बड़ा त्याग करना—अपने सुख-दुख को भूल जाना, राजा का आदर्श है।

जो शासक इन उसूलों को, भुलाता है बिसरता है।
वो गिरता है रसातल को, सचाई से मुकरता है॥

रियाया की मुहब्बत को स्वयं हाथों से खोकर वह—
कि अपनी मान-मर्यादा के प्रति अन्याय करता है ॥

मन्त्री—(हर्ष-पूर्ण) धन्य हो, प्रजा-भक्त !—
तुम्हारे जैसे शासक ही, प्रजा का कष्ट हरते हैं।
हकूमत वे नहीं करते, हृदय पर राज्य करते हैं ॥
इसी से भव्य-भारत का जहाँ में भाल ऊँचा है—
कि भारत के प्रजापति, न्याय का आदर्श धरते हैं ॥

लेकिन यह तो कहिए—महाराज ! राज-मुकुट किसके शिर की शोभा बढ़ायेगा ? प्रतापशाली सिंहासन पर कौन, भाग्यशाली विराजेगा ! पुत्र सी प्यारी प्रजा की बागडोर किसके हाथों में सोंपना चाहते हैं ?

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) अपने पूज्य चाचा वीरदमनजी के संरक्षण में ! बुलवाइए—उन्हें।

(मन्त्री, वीरदमनजी को बुलाने के लिए प्रहरी को भेजता है)

मन्त्री—लेकिन सम्राट् ! राज्य इस तरह नहीं सोंपे जाते। एक बड़ी समृद्धि, एक बड़ी सल्तनत किसी को देते वक्त उसकी नीयत, उसकी ईमान्दारी को परखा जाता है। आज थोड़े-से लोभ पर भाई; भाई की जान लेने में हिचक नहीं करता। माँ, बेटे के क़त्ल कर देने को बड़ी बात नहीं समझती। प्रार्थना है, प्रजापति एक बार फिर इस समस्या पर विचार करें।

श्रीपाल—(अटल-भाव से) काफ़ी सोचा जा चुका है इस पर ! मैं अपने पूज्य चाचा को राज्य सोंपता हूँ, किसी ग़ैर को नहीं।

मन्त्री—मगर राजनीति में चाचा और भतीजे की रिश्तेदारी का कोई उल्लेख नहीं है।

श्रीपाल—(उपेक्षा से) मुझे उन पर विश्वास है।

मन्त्री—(हठ पूर्वक) किन्तु राजनीति में विश्वास को कोई स्थान नहीं दिया गया। राजनीति अविश्वास और कठोर-कर्त्तव्य पर टिकी हुई है।

श्रीपाल—(कठोर होकर) जानता हूँ। लेकिन मैं निश्चय कर चुका हूँ, और अब अपने अधिकार को काम में लाना चाहता हूँ।

(इसी समय वीर दमन प्रवेश करते हैं।)

वीरदमन—(प्रवेश करते हुए ऊँची आवाज़ में) चम्पापुर का सिंहासन, अजय हो।

श्रीपाल—(सविनय) आगए ? (सिंहासन से उतर कर) चाचाजी प्रणाम !

वीरदमन—(सिर पर हाथ रखते हुए) आरोग्यता पाओ—पुत्र !

मन्त्री—(वीर दमन से) आपको जो कष्ट दिया गया है, उसका आशय यह है कि श्रीमान् चम्पापुर-नरेश ने प्रजा के दुख से दुखित होकर, जब तक शरीर आरोग्य न हो, तब तक सिंहासन छोड़ कर जंगलों में रहना तय किया है। वे चाहते हैं कि उतने दिन के लिए राज्य-भार आपके सुपुर्द किया जाय।

वीरदमन—मुझे इस सेवा से इन्कार तो नहीं है। लेकिन अपने प्यारे भातृज का जंगलों में रहना मुझे कैसे बर्दाश्त होगा ? क्या यह योग्य है कि पुत्र जंगलों की खाक छाने और उसका चचा राज-गद्दी पर बैठा मौज़ उड़ाए ?

श्रीपाल—(करुण-स्वर में) विपत्ति ने हमें इसके लिए विवश कर दिया है—चाचाजी ! ऐसा किए बिना प्रजा की खुशी नहीं लौटाई जा सकती। आप मेरे राज्य को अमान-

तन अपने हाथ में लेलें। मैं नीरोग होने पर राज्य वापस ले लूँगा।

वीरदमन—(सहर्ष) अवश्य ! मुझे राज्य की कोई इच्छा नहीं। तुम्हारी चीज़ जब चाहो, लो। मैं प्रजा की भलाई और सेवा की पुनीत-भावना द्वारा तुम्हारा शासन सँभाले रहूँगा।

पराई चीज़ के ऊपर जो नीयत को डिगाता है।
वो अपनी आबरू अपने ही हाथों से गँवाता है॥

श्रीपाल—(हर्षित होकर) यही बात है। देरी न कीजिए चाचा जी ! राजमुकुट आपके सिर पर स्थान पाने के लिए व्यग्र हो रहा है।

(श्रीपाल मुकुट उतार कर, वीरदमन के सिर पर रखते हैं। नैपथ्य में वाद्य-ध्वनि ! उपस्थित-जन जयघोष करते हैं—'चम्पापुर नरेश की जय हो !')

(श्रीपाल वग़ैरह सब कोढ़ी दरबार मे प्रस्थान करते हैं—गाते हुए)

गायन—बन चलो, नगर को छोड़ो।
कर्त्तव्य से मुँह मत मोड़ो॥
दुख से ही, सुख मिलता है।
फिर मन में क्या चिन्ता है ?
'भगवन्' से नाता जोड़ो॥
बन चलो०……

(पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

[स्थान—उज्जयनी, महाराज पहुपाल का दर्बार; मन्त्री वग़ैरह राज कर्मचारी बैठे हैं। एक ओर मैना सुन्दरी बैठी है—प्रसन्न]

मैना—(उठकर, विनय के साथ) क्या आज्ञा है, पिताजी ?

पहुपाल—(दुलार के स्वर में) एक बात पूछना है—बेटी ! और इसीलिए तुम्हें बुलाया गया है। बात यह है—अब तुम विवाह के योग्य हो चुकीं। तुम्हारे विवाह की चिन्ता ने मेरे हृदय को विह्वलता देना शुरू कर दिया है। मैं अब पिता के कर्त्तव्य से उऋण होना चाहता हूँ। कहो; तुम किस प्रतापशाली नरेश को पति रूप में प्रसन्नता के साथ पसन्द करती हो ?

मना—(अचरज के साथ) क्या कह रहे हैं, पिताजी ? क्या इस प्रश्न को सामने रखने के पहले इसकी उपयोगिता और योग्यता पर विचार किया जा चुका है ?

पहुपाल—(गंभीर स्वर में) प्रश्न नया नहीं है—मैना ! तुम्हें याद होगा—कुछ दिन पहले यही प्रश्न तुम्हारी बड़ी बहिन सुरसुन्दरी से किया गया था। और उसने अपनी इच्छा के मुताबिक, कोशाम्बी के राजकुमार हरिवाहन के लिए राय दी थी। मैंने उसकी इच्छा का सन्मान कर, उन्हीं के साथ पाणिग्रहण किया। आज वह आनन्द, ऐश्वर्य और सुख भोग रही है।

मैना—(दीन स्वर में) मुझे मालूम है, पिताजी ! लेकिन मैं समझती हूँ—एक कुलीन कन्या के सामने पति-निर्वाचन का प्रश्न रखना, उसका अपमान करना है। पिता को अधिकार है, वह चाहे जिसे अपनी कन्या को दे। कन्या का भला-बुरा, माता और पिता जैसे प्रेम-पूर्ण हृदयों के अधीन है।

लज्जा ही नारी की शोभा, लज्जा ही नारी का जीवन।
लज्जाहीना जो नारी है, उसको समझो उजड़ा-उपवन ॥
जिसमें कोयल की कूक नहीं, फूलों का मधुर-पराग नहीं।
जिसको दुनियाँ के पर्दे पर, बाकी आदर-अनुराग नहीं ॥

हुपाल—(क्रोध के साथ) जानती हो, मैना सुन्दरी! किसके सामने बोल रही हो? बड़ी बहिन को निर्लज्ज, और अपने को कुलीन बतलाते हुए कुछ संकोच होना चाहिए तुम्हें।

मैना—(दृढ़ किन्तु सरल शब्दों में) जानती हूँ, पूज्य पिताजी के सामने! विश्वास कीजिए कोई शब्द ऐसा न निकलेगा, जो आपकी पूज्यता के लिए अपमान-जनक हो। लेकिन पिताजी! मैं सत्य से मुँह भी न मोड़ सकूँगी। मैं मानती हूँ, बहिन सुरसुन्दरी की कुलीनता में कोई अन्तर नहीं। लेकिन उन्हें जो शिक्षा मिली, वह जो जिस वातावरण में घुल मिल कर अपने को भूल गई—यह उसी का कुपरिणाम, यह उसी की कुचेष्टा थी, जो उन्होंने नारी-सुलभ-लज्जा को ठुकरा कर, पति के विषय में अपनी इच्छा प्रगट करने के लिए मुँह खोला। नहीं, बहिन सुरसुन्दरी ऐसा कभी न कर सकतीं।

क्या से क्या कर डालता है, पल में सोहबत का असर।
पल में ही खूँख्वार कर देता, मिठाई को, जहर॥
नरम शाखों को जिधर, चाहो उधर को मोड़ दो—
हर तरह का असर उन पर, हो सकेगा कारगर॥

पहुपाल—(निरुत्तर होकर) हाँ, यह मानता हूँ—मैना सुन्दरी! मगर फिर भी कन्या से वर के बारे में सम्मति लेना कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि वह जिन्दगी का सौदा है। उसे अपने जीवन-साथी के विषय में पूरी जानकारी की जरूरत है।

मैना—(गंभीर-स्वर में) लेकिन पिता से ज्यादह गंभीर अध्ययन वह कर सके, यह दुराशा मात्र है! हो सकता है,

कि वह अपने भावों में बह कर, ग़लत-व्यक्ति के लिए अपनी सम्मति दे बैठे। माता और पिता से अधिक सन्तान के लिए कोई दूसरा हितू नहीं है। उनके द्वारा किया गया सम्बन्ध कन्या के लिए—सदा विवेक पूर्ण और आनन्द-दायी रहा है। कदाचित उनके हाथों अगर अन्धा, गूँगा बहरा, कोढ़ी भी मिले, तो स्त्री का धर्म है, उसे देवता समझे क्योंकि पति-सेवा से बढ़कर स्त्री के लिए कोई व्रत नहीं। जैसा जिसका संयोग बदा है, होकर ही रहेगा। भाग्य किसी के टाले नहीं टला। प्रिय-अप्रिय का संयोग कन्या के भाग्य पर ही मुनह-सर है। इसमें किसी का कोई दोष नहीं।

अपने-अपने भाग्य से सब, फूलते फलते यहाँ।
भाग्य की ही प्रेरणा से, काम सब चलते यहाँ॥
भाग्य को कोई किसी के, पलट पाया है नहीं—
आज तक देखा नहीं है भाग्य को टलते यहाँ॥

पहुपाल—(क्रोध में भर कर) चुप रहो, मैना सुन्दरी ! बहुत सुन चुका तुम्हारा उपदेश ! क्या जैन-गुरुओं ने तुम्हें यही शिक्षा दी है, कि उपकारी के उपकार के बदले में उसका तिरस्कार करो ? सरासर अहसान फ़रामोशी ! कहो, कहो—(कपड़ों की ओर देखते हुए) ये सुन्दर-सुन्दर क़ीमती कपड़े, ये ग़रीबों को स्वप्न में भी नज़र न आने वाले बहुमूल्य अलंकार ! बढ़िया-बढ़िया खाने, तरह-तरह के आराम तुम्हें मैं देता हूँ या भाग्य ?

मैना—(सरलता से) मेरा भाग्य !

पहुपाल—(ज़ोर से, क्रोध पूर्ण) भाग्य ?

मैना—(दृढ़-स्वर में) हाँ ! मेरा भाग्य ! नाराज़ न होइए पिताजी ! वह मेरा भाग्य ही था, जिसने आपके घर

में मुझे जन्म दिया। जहाँ तरह-तरह के आनन्द, उपभोग करने का मुझे मौक़ा मिला है। अगर मेरा भाग्य एक ग़रीब के घर में मुझे पैदा करता। जहाँ एक वक्त रोटी खाने के बाद, रात को तारे गिनने की नौबत आती। जहाँ भूख और प्यास को भुला कर, रात दिन मिहनत में डूबा रहना पड़ता। जहाँ सुन्दर कपड़ों के नाम पर, फटे, बदबूदार चिथड़ों पर गुज़ारा करना होता—वहाँ कहिए पिताजी! आप क्या-क्या मेरी इमदाद करते? अपने-अपने भाग्य के अनुसार आज करोड़ों आदमी परेशानियों में, दुखों में, संकटों में अपना जीवन बिता रहे हैं बताइए, आप उनकी क्या मदद करते हैं? क्यों नहीं, उन्हें सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहिनाते? क्यों नहीं, उन्हें जेवरों से ढक देते? क्यों नहीं, उनकी भूख का खयाल करते? मान लीजिए पिता जी! आप किसी को कुछ नहीं देते, जितना जिसके भाग्य में है, वह आपसे ले लेता है। मेरे भाग्य ने मेरे जीवन की ज़िम्मेदारी आपको सौंप दी है, आपका कर्त्तव्य है, उसे निभायें।

पहुपाल—(क्रोध से) बन्द करो, यह ज़हरीली बातें! मैना सुन्दरी! मैं तुम्हारी बातों से, तुम्हारे पांडित्य से, ख़ुश नहीं हूँ।

मैना—(सरलता से) मेरा दुर्भाग्य है कि सचाई पिताजी को दुख दे रही है। लेकिन मैं फिर प्रार्थना करूँगी, कि आप एक बार फिर विचार करें। सोचें—कि दुनियाँ वालों का भाग्य से कितना गहरा सम्बन्ध है—भाग्य ने आज आपको राजा बनाया है। नहीं, आप भी ग़रीब हो सकते थे, आपके आगे भी मजबूरियां के

पहाड़ खड़े हो सकते थे। मैं भी राजकुमारी न कहला कर, एक ग़रीब कन्या के नाम से पुकारी जाती। लेकिन भाग्य ने ही आपको राजा और मुझे राज-कुमारी कहलाने का मौक़ा दिया है।

भाग्य वह ताक़त है जिससे हारता संसार है।
भाग्य चाहे जो करे, उसको सभी अधिकार है॥
रंक राजा को बनादे, रंक को राजा करे—
कौन-सा है काम? जो उसके लिए दुश्वार है॥

पहुपाल—(क्रोध से) सुख और आनन्द में मग्न रहने वाली वाचाल छोकरी! देखूँगा तेरा भाग्य।

मैना—(सरलता और अचरज के साथ) भाग्य देखेंगे आप? लेकिन पिताजी भाग्य देखा नहीं जाता, बल्कि भोगा जाता है।

पहुपाल—(एक दम क्रुद्ध कर) जाओ! जाओ महल जाओ, बहुत देर हो चुकी।

मैना—(हाथ जोड़ते हुए) जो आज्ञा! प्रणाम! (जाती है)

पहुपाल—(प्रधान-मन्त्री से) देखा? आस्तीन का साँप ऐसा होता है। मैं जिसके ऊपर खुले हाथों खर्च करता हूँ, हर तरह का आराम पहुँचाता हूँ, प्राणों की तरह पालता हूँ। और वह कहती है—आप कुछ नहीं करते, मेरा भाग्य करता है। मुझे इसका भाग्य ही देखना है। बतला देना है कि मैं भी कुछ कर सकता हूँ। आज सुखों में डूब रही है, कोई ग़म, कोई चिन्ता नहीं है। समझ उठी है कि मुझसे ज्यादह अक्लमन्द दूसरा नहीं। लेकिन जब दुखों के बीच में, संकटों की छाया मे अपने को पाएगी, तो सारी भाग्य की बातें भूल जाएगी—

दुखों ने लाखों की नौजवानी,
मिटा के बूढ़ा बना दिया है।
अनेकों दुखियों की जिन्दगी को,
जमीं के नीचे सुला दिया है॥

प्र० मंत्री—(सादर) क्रोध न कीजिए—प्रजापति ! क्रोध, विवेक का शत्रु और पश्चाताप का साथी होता है। सन्तान का अपराध भी पिता के लिए खुशी की चीज़ है। क्योंकि सन्तान नादान होती है, और पिता उसे चतुर बनाने का जिम्मेदार। राजकुमारी की बातें भी कुछ बे बुनियाद नहीं हैं, उनके भीतर काफ़ी सत्य और तर्क है। प्रार्थना है, महाराज शान्त-चित्त होकर उन पर ग़ौर करें, और राजकुमारीजी को क्षमा दें।

पहुपाल—(बेरुखी के साथ) प्रधान जी ! इस बारे में मुझे आपकी मंत्रणा की ज़रूरत नहीं है। यह मेरी पारिवारिक समस्या है, राजनैतिक नहीं। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैना के भाग्य को ऐसे व्यक्ति के हाथों में दूँगा, जो दुनियाँ में सबसे ज्यादह दुखी, बदनसीब और बदसूरत होगा। जिसके शरीर को देखकर मुँह फिरा जाने को जी चाहता हो, जिसके शरीर की बदबू से नाक फटने लगती हो, जी मचला उठता हो। जो अपंगु हो, दुनियाँ में किसी लायक़ न हो।

प्र० मंत्री—(सविनय) लेकिन ऐसे व्यक्ति के साथ राजकुमारीजी की शादी करने का परिणाम क्या होगा, क्या इस पर श्रीमान् ने विचार किया है ?

पहुपाल—(व्यंगपन के साथ) विचार ? विचार वहाँ किया जाता है, जहाँ अमंगल का भय होता है। मैं खुद जान बूझ

कर जब उसे अमंगल की आग में झोंक रहा हूँ, तब विचार की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

प्र० मंत्री—(दृढ़-स्वर में) सही है। लेकिन पिता कहला कर कभी किसी ने ऐसा नहीं किया, जैसा आप करने जा रहे हैं। अवश्य ही आप पिता के आदर्श से गिर कर, दुनियाँ में एक भद्दी मिसाल रख रहे हैं। राजा का जीवन, प्रजा का जीवन है। कोई बात उसकी छिपाई नहीं जा सकती। और यों, हर बात मंत्री के मशविरे से ही होनी चाहिए। आपको मेरी मंत्रणा की ज़रूरत नहीं। लेकिन मुझे आपको उस काम से रोकना है, जो आपकी प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक हो। इसलिए कि यह मेरा फ़र्ज़ है।

मुहब्बत को किया गारत, ख़िलाफ़त के जुलूसों ने।
हज़ारों सल्तनत बरबाद करदीं चापलूसों ने॥
गिराया जिसने अपने फ़र्ज़ को, दुनियावी भूलों में।
गिरा दुनियाँ की नज़रों में भी इन्सानी उसूलों से॥

पहुपाल—(ऊब कर) ख़ैर! मैं मानता हूँ कि मैं बुरा कर रहा हूँ। और तुम अपना फ़र्ज़ अदा कर चुके। अब मैं उज्जयिनी-नरेश की हैसियत से आज्ञा देता हूँ कि सुबह भ्रमण की तैय्यारियाँ की जाएँ। मैं स्वयं वर की खोज में निकलूँगा।

प्र० मंत्री—(सिर झुका कर) जो आज्ञा।

(पर्दा गिरता है)

चौथा दृश्य

[स्थान—चम्पापुर का उपवन, महाराज श्रीपाल सिंहासन पर विराजे हैं, सात सौ कोढ़ी-योद्धा नीचे, इधर-उधर बैठे हैं। सब कोढ़ से पीड़ित और उदास-मुख हैं]

श्रीपाल—बस यही है, भाग्य पर विजय पाने का रास्ता यही है। उसके दिए हुए रंज को ख़ुशी में बदल दो। उसकी बर्बरता का मुस्करा कर मुक़ाबिला करो। याद रक्खो—रात के बाद प्रभात, पतझड़ के बाद बसन्त, दुख के बाद सुख जरूर आता है। जीवन और मृत्यु जिस तरह एक दिन गले मिल कर ही रहते हैं। सुख और दुख भी उसी तरह एक दूसरे के लिए तड़पा करते हैं। कोई नहीं जानता, भविष्य के गर्भ में क्या है? जो भाग्य आज हमें दुखों से रुला रहा है, कल वही सुखों से हँसा सकता है। भाग्य को बदलते देर नहीं लगती, क्योंकि वह शक्तिशाली है; सुख और दुख दोनों पर ही उसका समान अधिकार है!

वह चाहे जन्म-दरिद्री की, कुटिया में भरे खजाने को।
चाहे तो पूँजी पतियों को, तरसादे दाने-दाने को॥

मन्त्री—(कराहते हुए) सही है, महाराज! नगर छोड़े आज महीनों बीत चले, मगर भाग्य को अब तक तरस न आया। वह जैसे हम लोगों की ओर से बेख़बर हो गया है। यह उद्यान की खुली हवा, मनोहर धूप भी हमारे कोढ़ को कुछ लाभ न पहुँचा सकी।

श्रीपाल—(आश्चर्य से) ठहरो! आज इस जन-शून्य उपवन में यह नाद कैसा? कौन इसकी नीरवता भंग करने को उतारू हुआ है? (नैपथ्य में वाद्य-ध्वनि) मालूम होता

है—कोई मौजीला राज-पुत्र घूमता-फिरता यहाँ आ पहुँचा है।

मन्त्री—(दृढ़ता के साथ) निस्सन्देह, महाराज का अनुमान सत्य है।

(महाराज पहुपाल और मन्त्री प्रवेश करते हैं। ज़रा दूर रहकर—)

पहुपाल—(हर्षित होकर) मिल गया, मिल गया—प्रधान मन्त्री। मुझे वर मिल गया; आखिर मेरा श्रम सफल हुआ। इतने दिन मार्ग में मुसीबतें उठाई, जगह-जगह वर की खोज की। लेकिन सब बेकार। पूछिए—यह कौन से नगर का उपवन है? यहाँ क्यों रहते हैं—शरीर में क्या हुआ है? कौन हैं ये लोग?

प्र० मंत्री—(आगे बढ़कर श्रीपाल से) उज्जयिनी-नरेश चाहते हैं कि आप अपना परिचय दें।

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) परिचय? परिचय यह है कि हम हैं भाग्य के सताए हुए प्राणी।

पहुपाल—(स्व-गत) भाग्य? यहाँ भी भाग्य? दोनों भाग्य-भक्तों का जोड़ा अच्छा रहेगा। मैना भी ऐसे वर को पाकर, समझ लेगी कि पिता क्या वस्तु है?

प्र० मंत्री—(संयत-स्वर में) कुष्टीराय! हमें आपके इस परिचय से सन्तोष नहीं। चाहते हैं कि आप अपनी पूरी दशा बयान करें।

चम्पापुर के मंत्री—(हर्ष भरे स्वर में) सुनिए, आप हैं चम्पापुर नरेश महाराज श्रीपाल। भाग्य की कठोर निष्ठुरता ने आपके सोने से दमकते शरीर को कोढ़ जैसे घृणित रोग से भर दिया है! आप प्रजा को अपनी दुर्गन्धि से दुखित देख कर, वनों में अपने संकट के दिन काट रहे

हैं। क्या बतला सकेंगे, उज्जयिनी-नरेश के पधारने का कारण ?

पहुपाल—(स्नेह-पूर्ण) कारण ? कारण यह है, चम्पापुर नरेश ! कि मैं अपनी कन्या मैना सुन्दरी की आपके साथ शादी करना चाहता हूँ।

श्रीपाल—(अचरज के साथ) शादी ? आप……अपनी कन्या की……मेरे साथ……? (अपना शरीर, अपनी टेढ़ी हुई बाँह की ओर देखते हुए) उपहास न कीजिए उज्जयिनी-पति ! भविष्य का किसी को पता नहीं। आज जो अच्छा शरीर है, कल वह रोगी हो सकता है। अनेकों रोगों का घर है यह शरीर। मेरा शरीर भी किसी दिन नीरोग, और आपकी तरह सुन्दर था।

पहुपाल—(जल्दी से) आपने समझने में भूल की है श्रीपालजी ! मैं उपहास नहीं कर रहा, सत्य कह रहा हूँ। जो वाणी आपके कानों में पहुँची है, वह मेरे हृदय की वाणी है। मेरी इच्छा के अनुकूल है।

उज्जै० मंत्री—(पहुपाल से) समय आ गया है, कि एक बार फिर मैं आपको उस निश्चय से हटाने का प्रयत्न करूँ, जिसे करने के लिए आप कटिबद्ध हैं। और जो आपकी मर्यादा को ले डूबने वाला है। उज्जयिनी-पालक ! समय रहते चैतन्यता प्राप्त कीजिए—ये कन्या पर किया गया क्रोध आपकी प्रतिष्ठा, आपकी मर्यादा, आपकी कीर्ति सबको मिटा कर रहेगा। एक दिन पछताना पड़ेगा, इसके परिणाम पर।

समझ कर, सोच कर हो काम करना बुद्धिमानी है।
सफलता की ये जननी है चतुरता की निशानी है॥

पहुपाल—(गंभीर-स्वर में) मैं अपने निश्चय को नहीं बदल सकता—प्रधान मन्त्री ! मैना का भाग्य चम्पापुर-नरेश महाराज श्रीपाल के हाथों में ही दिया जायगा।

प्र० मंत्री—(निर्भय होकर) तो निश्चय ही पिता के द्वारा कन्या का अनर्थ होगा।

पहुपाल—अनर्थ ? भूल में हो तुम ! क्या नहीं, जानते—श्रीपाल कुलीन हैं, क्षत्रिय हैं, और एक बड़े राजा हैं ! राजा की पुत्री की राजा के साथ शादी होना, किस प्रकार अनर्थ है ? क्या चम्पापुर नरेश की शरण में मैना दुखी रहेगी ? किस चीज़ की कमी है, उनके यहाँ ? राज्य है, सेना है, ऐश्वर्य है—धन है, दौलत है, सब-कुछ है।

प्र० मंत्री—(दृढ़ता के साथ) लेकिन यह 'सब-कुछ' अगर गहराई के साथ सोचिए तो कुछ नहीं है। क्या आप राज्य के साथ शादी करते हैं, प्रतिष्ठा ऐश्वर्य के साथ शादी करते हैं, या सोने और चाँदी के साथ शादी करते हैं ? मान लीजिए—कन्या की शादी वर के साथ होती है। कन्या का सुख-दुख, वर की खुशी-रंज में रहता है। अच्छे कपड़े, बढ़िया भोजन, तरह-तरह के आभूषण और आकाश को छूने वाले महल भी स्त्री को सुखी नहीं बना सकते। उसकी ख़ुशी, उसका सुख, उसकी दुनिया—उसका पति है।

पति-सेवा उसका जीवन है, सुख है; यह झूँठा तर्क नहीं।
पति दुखी अगर रहता है तो, स्त्री को समझो नर्क यहीं ॥
पति उसके प्राणों का ईश्वर, उसकी दुनियाँ का उजियाला—
है प्यार अगर घर में तो फिर, घर स्वर्ग में कोई फ़र्क नहीं ॥

पहुपाल—(निरुत्तर होकर) बार-बार कहने से कोई लाभ नहीं।

मैना के ज़हरीले शब्दों ने मेरे हृदय को आहत कर दिया है मैं उसके भाग्य को और अपनी ताक़त को एक बार आज़मा कर ही रहूँगा।

प्र० मंत्री—(दीनता के साथ) दया कीजिए। रहम कीजिए, निरीह-कन्या के जीवन के साथ खिलवाड़ अच्छा नहीं। ज़रा पिता के दिल से पूछिए—क्षत्रिय के शौर्य से पूछिए—कि आप जो कर रहे हैं, उचित कर रहे हैं? शरण में पड़ी हुई—आश्रिता कन्या पर, यह कठोर प्रहार कभी शुभ नहीं। यह स्वाधीनता का अनादर है। अपने दायित्व के साथ अन्याय है।

पहुपाल—(क्रोध से) चुप कीजिए अपनी वाणी! मेरा निश्चय इन बातों की गर्मी से पिघल नहीं सकेगा। (श्रीपाल से) चलिए, चम्पापुर नरेश! उज्जयिनी पधारिए। मैं आपका स्वागत करूँगा। कन्या की भेंट चढ़ाऊँगा।

श्रीपाल—(दृढ़ता से) क्या वचन देते हैं? वादा करते हैं—आप?

पहुपाल—(सेवक को इशारा करते हैं, वह थाल लेकर समीप आता है) वादा नहीं, तिलक करता हूँ। (महाराज तिलक करते हैं, नेपथ्य में वाद्य ध्वनि)

सबलोग—(ज़ोर से) चम्पापुर नरेश की—जय हो।

(पर्दा गिरता है)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—उज्जयिनी महाराज पहुपाल का प्रासाद। विवाह-मण्डप में महाराज श्रीपाल और राजकुमारी मैना सुन्दरी बैठी हैं। पुरोहित बैठे हैं, सामने होम-कुण्ड है जिसमें आग धधक रही है। बन्दनवार मोतियों की माला वगैरह से विवाह-मण्डप की शोभा की गई है—काफ़ी सजावट है। उभय-पक्ष के मन्त्री तथा दूसरे लोग—कोढ़ी वगैरह—सब बैठे हैं। कन्या-पक्ष के लोगों की मुखाकृति दुखित है। महाराज पहुपाल व्यग्र-से, क्रोधित से चक्कर काट रहे हैं। नेपथ्य में बाजे बज रहे हैं)

पहुपाल—बाजों की घनघोर ध्वनि ने आकाश गुँजा रक्खा है। मनोहरता ने सारे नगर को अपने आलिंगन में कस लिया है, जैसे उज्जयिनी में स्वर्ग उतर आया हो। आँखों का आनन्द देने वाला सौन्दर्य जहाँ तहाँ बिखरा हुआ, नज़र आ रहा है। प्रत्येक वस्तु के भीतर आज नवीनता भर दी गई है। इसलिए कि आज राज-पुत्री मैना सुन्दरी की शादी है। शादी? यह दुनियाँ में पहली शादी है—जो आँसुओं की बरसात में, जलते हुए कलेजों और ठन्डी आहों के बीच में की जा रही है। सारा अन्तःपुर मूक-स्वर में रो रहा है, सभी राज कर्मचारियों की आँखें भींग रही हैं। उज्जयिनी का बच्चा-बच्चा इस शोक-समारोह के लिए मुझे अपराधी मान कर धिक्कार की नज़रों से देख रहा है। चारों ओर उदासी—जैसे स्वर्ग पर श्मशान ने कब्जा कर लिया हो। कानों में रोने की आवाजें आ रही हैं, हृदय में कोई रो रहा है। इन महोत्सव के बाजों में किसी ने रोना भर दिया है। बन्द करदो बाजे। (बाजे बजना बन्द होता है) कहो,

कहो—मैना सुन्दरी ! क्या अब भी तुम्हें भाग्य का भरोसा है ?

मैना—(मधुर-शब्दों में) पिताजी ! मुझे अपने भाग्य पर उतना ही भरोसा है, जितना आपको अपनी सत्ता पर ! मुझे विश्वास है, कोई किसी के भाग्य को बदल नहीं सकता। कर्म की रेखा अमिट है।

बदा है भाग्य में सुख-दुख, टलेगा वह नहीं टाले।
जो चाहे आज़माना वह, हज़ारों बार अज़माले ॥

पहुपाल—(क्रोध में भरकर) हठीली छोकड़ी ! अब भी तू अपनी ज़िद से बाज़ नहीं आती ? फाँसी के तख़्ते पर पैर रक्खे हुए है, गले में फन्दा पड़ा हुआ है, जीवन भर तक न खुलने वाली गाँठ कसी जाने के लिए तैयार हो रही है।

उस बन्धन में बँध जाएगी, जिसका खुलना आसान नहीं।
मरते मर जायेगा जीवन, लेकिन निकलेगी जान नहीं ॥

मैना—(दृढ़-स्वर में) आदर्श से न गिराइए—पिताजी ! ये भयावने कल्पना-चित्र मेरे सत्य पर परदा न डाल सकेंगे। तिल-तिलकर मारने वाली मृत्यु मुझे कर्तव्य से न डिगा सकेगी। पिताजी की खुशी के लिए मैं सब कुछ त्याग कर सकूंगी। इसलिए कि वह सन्तान का कर्तव्य है।

कर्तव्य अगर निभना है तो फिर प्राणों की परवाह नहीं !
बलिदान बिना मिल सकी किसे, दुनियाँ में सच्ची राह कहीं !!
प्राणों को देकर भी होगा, माँ-बाप से कोई उऋण नहीं--
दुख झेले जिनने हँस-हँसकर, लाए जो मुँह पर आह नहीं !!

प्रधानमंत्री—(आँखें पोंछते हुए) खुशी को रंज में न बदलिए—

मुझे ज्ञान दे सकते। प्रधान मन्त्री की न्यायोचित मंत्रणा मुझे इस अनर्थ से रोक सकती ! क्षमा ! क्षमा करदो मुझे मैना सुन्दरी ! तुम्हारा अपराधी पिता क्षमा की याचना करता है। (सिर झुकाता है)

मैना—(समीप आकर, प्रेम से) क्षमा ? पुत्री के पास पिता के लिए क्षमा नहीं, प्रणाम होता है बन्दना होती है। व्यर्थ ही पश्चाताप कर चित्त न दुखाइए पिताजी ! भाग्य ने जो कुछ दिया है, मुझे उस पर सन्तोष है।

पहुपाल—(अश्रु-पूर्ण) सन्तोष है तुम्हें ! लेकिन वह अपने असन्तोष की आग को किस तरह बुझा पाये ? जिसने निर्दयता पूर्वक किसी के सोने से संसार में आग लगादी हो। जिसने फूल-सी कन्या को कोढ़ से पीड़ित नारकी की शरण में झोंक दिया हो।

मैना—(दीनता से) विनय करती हूँ पिताजी ! वज्र से कठोर शब्द अपने जमाता के लिए प्रयोग न कीजिए। मुझे उनकी बुराई में सुख नहीं मिलता। वह दुनियाँ की नज़रों में भले ही रोगी हों, लेकिन मेरी आँखों ने, हृदय ने उन्हें देवता मान लिया है।

भक्त ज्यों सहते नहीं, भगवान के अपमान को।
चढ़ा देते हैं ख़ुशी से, श्री पदों में प्राण को॥
है वही नारी की श्रद्धा, प्राण-पतियों के लिए—
कर चुकी अर्पण चरण पर, जान को, ईमान को॥

पहुपाल—(रोते हुए) सत्य कहती हो—बेटी।

थी भूल मेरी ही, जो मुझे अब—
हज़ार मुँह हो के खा रही है।
कि ख़ाक करके ही अब रहेगी—
जो आग मुझको जला रही है॥

प्र० मंत्री—(आँखें पोंछते हुए) रोने और पश्चाताप के लिए जीवन पड़ा हुआ है। जिस उमंग और उतावली के साथ शादी की गई है, उसी तरह विदा भी करने की आज्ञा दीजिए—महाराज।

फलेगा वह, जो बोया जा चुका है।
समय अब भोगने का, आ चुका है॥

पहुपाल—(सिसकते हुए) भाग्य! तू मेरे ऊपर कुमति बन कर छा गया तूने मुझे लूट लिया, मुँह दिखाने लायक न छोड़ा। आह! हृदय में जलने वाली ज्वाला अगर तू मुझे जला सकती? खड़े रहने के लिए जगह देने वाली जमीन, अगर तू मुझे अपने में छिपा सकती। तो मैं अपने को कितना भाग्यशाली समझता?

मैंना—(पहुपाल का सिर उठाते हुए) न रोइए पिताजी! मंगल में अमंगल का विष घोलना अच्छा नहीं होता। आपके द्वारा मेरा बुरा नहीं हुआ। अच्छा-बुरा सब भाग्य का किया होता है। आप प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दीजिए।

पहुपाल—(शोक-पूर्ण) आशीर्वाद? मैं कैसे आशीर्वाद दूँ बेटी? किस मुँह से कहूँ कि—'सुखी रहो! आनन्दमय जीवन बिताओ।' जहर पिला कर कैसे कहूँ कि—'तुम्हारी हजार वर्ष की आयु हो।' नहीं, बेटी मैं तुम्हारा पिता नहीं, शत्रु हूँ। तुम मुझे मॉफ करदो।

(बाजे बजते हैं, श्रीपाल-मैंना, सब लोग विदा होते हैं)

पहुपाल—(विह्वलता से) मैंना! मैंना तुम्हारी विदा हो रही है। तुम जा रही हो? राजपुत्री की विदा कोढ़ी के साथ? नहीं, नहीं यह देखने के लिए आँखें

खुली न रह सकेंगी। मैना···मैना···मेरी प्यारी बच्ची-मैना !

(सब रोते हैं, नैपथ्य में स्त्रियों का रोना)

(पर्दा गिरता है)

छटवाँ दृश्य

(स्थान—उज्जयिनी के बाहर बना हुआ श्रीपाल का महल ! महाराज श्रीपाल बैठे हैं, मैना सुन्दरी पति-सेवा में संलग्न है कभी ख़ून पीव पौंछती है कभी उठाती है लिटाती है। श्रीपाल के मुँह पर व्यग्रता सी दीख रही है।)

श्रीपाल—(अधीर-भाव से) दूर रहो—सुन्दरी ! डर है कि यह ख़तरनाक-बीमारी तुम्हारे शरीर पर भी हमला न करदे। यह तुम्हारा सुन्दर शरीर इसलिए नहीं है, कि तुम ख़ून; पीव और गलते हुए घावों में उसे लगाओ। तुम्हें न भूलना चाहिए कि तुम राज-पुत्री हो।

मैना—(अचरज से) मैं ? राजपुत्री हूँ ? यह तीखे-प्रहार न कीजिए प्राणेश्वर ! मैं राज-पुत्री नहीं, राजरानी हूँ। अपने देवता की पुजारिन हूँ। पुजारिन को सेवा का हमेशा अधिकार रहा है।

यह वह सेवा है जिसको विश्व में सत्कर्म कहते हैं।
यह वह सेवा है जिसको नारियों का धर्म कहते हैं॥

श्रीपाल—(उतावली के साथ) ख़याल ग़लत नहीं हैं। लेकिन सुन्दरी ! जब तक मेरे शरीर में रोग है, मुझसे दूर रहो।

मैना—(आश्चर्य से) दूर रहूँ ? स्वामी की सेवा से सेविका दूर रहे ? यह कैसे होगा ? क्या चन्द्रमा से चाँदनी और प्रतापशाली प्रभाकर से सुनहली किरणें जुदा हो सकीं

है ? क्या फूलों से सुगंधि अलग है ? प्राणेश्वर ! दासीको सेवा से दूर न रखिए ! धर्म से न गिराइए—पति सेवा से बढ़कर नारी के लिए, कोई धर्म नहीं है !

सती सीता ने नारी-धर्म से सन्मान पाया था !
दुलारी-द्रोपती ने भी इसे मन में बिठाया था !!
अनेकों कष्ट झेले, किन्तु छोड़ा था नहीं इसको—
इसी ने अंजना के भाग्य को ऊपर उठाया था !!

श्रीपाल—(हर्ष से गद्‌गद् स्वर में) धन्य हो ! मैं अपने भाग्य पर फूला नहीं समाता ! जिसे तुम जैसी महान स्त्री मिले वह पुरुष नहीं, देवता है ! लेकिन मैना सुन्दरी ! मैं यह देखकर धैर्य खो बैठता हूँ, शर्म से गढ़ जाता हूँ कि तुम्हें मुझ जैसा कुरूप, कोढ़ी—बदनसीब पति मिला है । जिसकी सिर्फ़ बदबू से ही दूसरे का जी खराब हो उठता है। कहा मानो, सुन्दरी ! इस देवागनाओं जैसे कोमल, सुन्दर शरीर को कोढ़ जैसे नापाक-रोग के पास न लाओ। मुझे यह तुम्हारा खून-पीब पोंछना अच्छा नहीं लगता ।

मैना—(घुटनों के बल हाथ जोड़ते हुए) क्षमा करो प्राण नाथ ! दासी पर ऐसा क्या अपराध बन पड़ा । जो इस तिरस्कार की ज्वाला में जला रहे हैं ? नहीं, मुझे सेवा से जुदा न कीजिए । छाया की तरह रहने वाला यह आधा- शरीर दूर रह कर भी सुखी नहीं रहेगा। पति-सेवा से दूर, नारी का जीवन पेड़ से टूटे फल की तरह असहाय हो जाता है । उसे दुनिया में कहीं आनन्द नहीं मिलता ।

सता रहा हो कठोर होकर,
न मिटने वाली असीम-बाधा।
नहीं है सम्भव, कि उस समय पर-
रहे सुखों में शरीर-आधा॥

श्रीपाल—(प्रेम-पूर्ण) धन्य हो मैना सुन्दरी !
तुम्हारे जैसी सतिओं ने ही, जग में नाम पाया है।
पति-व्रत का अनोखा पाठ, दुनिया को पढ़ाया है॥
बनाया है पती-सेवा को अपना ध्येय जीवन का—
जनम लेकर के भारत-वर्ष का गौरव बढ़ाया है॥

मैना—(दीन और संकोच रूप से) न लजाइए, महाराज !
दासी का जीवन-फूल आपके चरणों पर है।
यह इन चरणों का गौरव है, जो मैं कर्तव्य मण्डित हूँ।
असल में यह सचाई है कि विदुषी हूँ न पण्डित हूँ॥
(पीव पोंछते हुए) कहिए, प्राण पति ! अब आपकी पीड़ा की क्या दशा है ?

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) हृदयेश्वरी ! जिस दिन से तुमने मेरे जीवन में प्रवेश किया है, मुझे मालूम होने लगा है—जैसे मेरा दुर्भाग्य, तुम्हारे पतिव्रत के आगे पराजित होता जा रहा है। वेदनाओं में उतनी कठोरता नहीं रही है।

मैना—(हर्षित होकर) भगवान भला ही करेंगे—स्वामी ! आप सन्तोष रक्खें। आपको नीरोगता के लिए मैं एक महान् आयोजन—एक महा-यज्ञ का सम्पादन कर रही हूँ। एक महामंत्र आपके कठिन-साध्य रोग विनाश के लिए प्रयोग किया जा रहा है जैसे ही यज्ञ पूर्ण होगा, आप देखेंगे कि आपकी नीरोगता फिर लौट आई है।

ये उजड़ी वाटिका फिर देख लेना लहलहायेगी।
महा-मंत्रों की ताक़त को, खुलासा कर दिखायेगी॥

श्रीपाल—(जिज्ञासा-पूर्ण) वह कौन है ऐसा महामंत्र ?
दवाएँ जिससे हारी हैं, वह उसको हार दे देगा।
मिटा कष्टों की दुनिया को नया-संसार दे देगा॥

मैना—(गंभीरता से) प्रभो ! उस महा मंत्र का नाम है—
सिद्ध-चक्र ! मंत्र-स्थापना के बाद उस महा व्रत का आठ दिन तक दृढ़ता के साथ पालन किया जाता है। फिर भगवान के पवित्र-रूप में डूब कर, मंत्रोच्चारण के साथ-साथ अपने को भगवत्-चरणों में सौंप देते हैं।

श्रीपाल—(खुशी के साथ) धन्य है, प्रिये ! तुम्हारी बुद्धि को धन्य है। तुमने वह चीज़ मेरे लिए तजवीज़ की है, जो मेरे रोग का अन्तिम उपाय है। यही वह रास्ता है, जो हमें सुख की ओर ले जाएगा।

है भगवत्भक्ति ही वह वस्तु, जो दुख को मिटाती है।
अँधेरी-आत्मा को विज्ञता में जगमगाती है॥
यह वह शै है जो प्राणों में नया-संगीत भरती है—
गुलामी से छुड़ाकर, पूर्ण आज़ादी दिलाती है।

(मैना—पति सेवा में लगी रहती है।)

(पर्दा गिरता है।)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—वही, श्रीपाल के महल का भीतरी भाग, सात सौ कोढ़ियों के साथ महाराज श्रीपाल विराजे हैं।)

श्रीपाल—(हर्षित-चित्त) आज का दिन मेरे जीवन में एक आनन्द का दिन होगा। आज रोग के ऊपर

आरोग्यता विजय पाएगी। भगवत्-भक्ति के कल्याण-कारी मंत्रों की महान् शक्ति दुनिया को आश्चर्य में डाल देगी। सती के पति-प्रेम का एक नया-रूप आज देखने को मिलेगा।

ये रंजो गम के दिन सारे, ख़ुशी में बदल जाएगे।
नया-जीवन यहाँ से आज हम-सब-लोग पाएँगे॥

वह देखो—आनन्द-दुन्दुभी बज उठी, जय-घोषों से आकाश गूँजने लगा। शीघ्र ही दुखों की दुनिया ख़त्म होने जारही है। (नेपथ्य में बाजे बजते हैं, 'अहिंसा धर्म की जय।' सुनाई देती है) (श्रीपाल अपने कोढ़ की ओर देखते हुए) रोग राज! आज तुम्हारी आयु का अन्त आ पहुँचा है। ज़ुल्म, अत्याचार और सताने के बुरे परिणाम के लिए तैयार होजाओ! देखलो कि अत्याचारी की क्या गति होती है?

(इसी समय कर्ण-प्रिय बाजों की ध्वनि के साथ, जय बोलते हुए, पुजारियों को साथ लिए मैनासुन्दरी प्रवेश करती है। साथ में एक सुन्दर पात्र है। पुजारी मुकुट, कुण्डल, हार और केसरिया धोती दुपट्टा पहिने हैं।)

सब लोग—(ज़ोर से) अहिंसा धर्म की जय हो!

मैना—(सविनय—)

जयहो तुम्हारी भगवन्! सुख शान्ति के विधाता।
हरदो क्लेश मेरा दुखियों के अन्न-दाता॥
पाया नहीं तुम्हारा, दुनिया ने पार अब तक—
सन्ताप-ताप-हारी! हर दीजिए असाता॥

—सुख और शान्ति का मार्ग बतलाने भगवान्! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। तुम्हारे अभिषेक का यह पुनीत सुगन्धित-जल—जो अशान्ति की आग को बुझाकर,

आत्मिक-शान्ति प्रदान करता है। मैं इन वेदनाओं से घिरे हुए, प्राणियों पर छिड़कती हूँ—भगवन् इन्हें शान्ति दो !

(मैनासुन्दरी गन्धोदक छिड़कती है, सब के रोग दूर होते हैं। घावों के निशान तक मिट जाते हैं। सब सुन्दर होजाते हैं। श्रीपाल के शरीर पर जैसे-जैसे जल छिड़कती है, सुन्दरता बढ़ती है। सब प्रसन्न और चकित नज़र आते हैं।)

श्रीपाल—(अपने लंगड़े पैर, टेढ़ी बाहों को धीरे-धीरे सीधा करते हुए, अचरज के साथ) चमत्कार ! चमत्कार !! भगवत्भक्ति का चमत्कार ! महामंत्रों की अचिंत्य शक्ति ! पति-सेवा का महान—फल ! धन्य हो प्रभु !···

ये भगवत्-भक्तिही दुखियों के दुखका खात्मा करती।
कि दुखिया आत्मा को एक दिन परमात्मा करती ॥

मैना—(हर्षित-स्वर में)—प्रभो ! प्रभो !! दीनों की पुकार पर मंत्रों के चमत्कार के रूप में उपकार करने वाले प्रभो ! मैं तुम्हारी बन्दना करती हूँ।

विश्व को तुमने दिखाया, मंत्रबल या भक्तिबल।
और करदी आपने ही साधना मेरी सफल ॥
मेरी दुनिया को बनाया, आपने आलोक मय।
संकटों पर आज सुखने, पूर्णतः पाई विजय ॥

श्रीपाल—(मैनासुन्दरी की ओर) मैनासुन्दरी ! इस आनन्दकारी विजय का श्रेय तुम्हारे हाथ है। तुम्हारी पुनीत पति-सेवा ने ही आज का दिन देखने को दिया है।

धन्य हैं वह नारियाँ, हैं लीन जो पतिभक्ति में।
पूर्वजों का तेज बाक़ी है उन्हीं के रक्त में ॥

(पर्दा गिरता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—महाराज श्रीपाल का शयन कक्ष, समय-अर्ध-रात्रि। श्रीपाल लेटे हैं। पतिपरायणा मैना सुन्दरी नीचे बैठी, उदास-मुख से कुछ सोच रही है। पास ही दूसरी शैय्या सूनी पड़ी है। बीच में टेबिल जैसी चौकी पर लैम्प जल रहा है।)

मैना—(दीन-स्वर में) आधी रात हो चुकी है। सारा संसार निद्रा की गोद में पड़ा, अचेत हो रहा है। दुनिया की सारी आँखें बन्द हैं। लेकिन मेरे प्रभु जाग रहे हैं। उनकी आँखों की नींद न जानें कहाँ खोगई है ?....(श्रीपाल से) न छिपाइए प्राणाधार ! प्रगट कर दीजिए कि वह कौन-सी चिन्ता है, जिसने निर्दयतापूर्वक आपकी निद्रा का अपहरण किया है।

श्रीपाल—(गंभीर-वाणी में) मलीनता न लाओ प्राणेश्वरी ! नींद न आने की कोई खास वजह नहीं है। अचानक आटूटने वाले विचारों ने मुझे थोड़ी विकलता दे दी है। तुम सो रहो !

मैना—मैं सो रहूँ ? पति के पहिले सो जाना स्त्री-धर्म के विरुद्ध है—मेरे प्रभु ! मुझे बातों में न टालो। कहो, वह कौन-सा विचार उत्पन्न हुआ है, जिसने हमारी सुख की दुनिया में अशान्ति का शंख फूँका है। क्या चम्पापुर से कोई समाचार आए हैं ? मेरे पिताजी ने कुछ कहा है ? किसी सुन्दरी के कठोर-कटाक्ष ने हृदय में घाव किया है ? बोलो, बोलो, स्त्री से छिपाना उसके दासत्व के साथ अन्याय है।

श्रीपाल—(दुखित होकर) किन बातों की ओर झुक रही हो ? ऊँ हुँक ! यह कुछ नहीं—मैना सुन्दरी ! मैं तुम्हारे उपकार के प्रति कृतज्ञ हूँ। मुझे वे दिन भूले नहीं हैं,

जब मैं अपाहिज कोढ़ी था। और तुमने मुझे आरोग्य किया था, सेवा से प्रसन्न किया था। मैं अन्याय नहीं करूँगा प्रिये! तुम से ज्यादह मेरे लिए कोई दूसरी स्त्री संसार में नहीं है।

मैना—फिर नींद न आने का कारण?

श्रीपाल—कारण? कारण यह है कि आज मुझे अपने कर्तव्य की याद आई है। भीतर के स्वाभिमान ने मुझे ललकारा है।

मैना—क्या कहा है?

श्रीपाल—कहा है कि सुसराल में रहना पिता की ख्याति को बदनाम करना है। कुटुम्ब की मर्यादा को लोप करना है। कायरता है! वल्लभे! यहाँ लोग मुझे राज-जँवाई के नाम से पुकारते-पहिचानते हैं। कोई मेरे पिताजी का नाम नहीं लेता। मेरा नाम, मेरे देश का नाम कोई नहीं जानता। यह कैसी कठोर समस्या है। वह पुत्र नहीं, जो अपने पिता के नाम को न चमका सके। वंश की प्रतिष्ठा को न बढ़ा सके। पुत्र और पुत्री में यही अन्तर है। पुत्री का जीवन जहाँ दूसरे कुल की वृद्धि करता है, वहाँ पुत्र अपने ही वंश में कुल दीपक कहाता है।

मैना—(गंभीर-स्वर में) सत्य कह रहे हो प्राणनाथ! निस्सन्देह यहाँ का निवास आपकी योग्यता को शोभा नहीं देता। वंश-लोप हुआ जा रहा है। अब हम लोगों का चम्पापुर चलना ही उचित होगा।

श्रीपाल—(चिन्तित-स्वर में) हाँ! यही मैं सोचता हूँ, लेकिन इसके पहले, धन-दौलत, और सैनिक शक्ति का अपने पास होजाना आवश्यक है।

मैना—(जल्दी से) यह सब मेरे पिताजी कर सकेंगे। आप उनसे कह देखिए।

श्रीपाल—(मुस्कराते हुए) भूलती हो सुन्दरी! दूसरे की सहायता से किसी का भला नहीं हुआ, कोई दूसरे के धन से धनी नहीं कहाया। अपनी ही किस्मत, अपने ही पौरुष, अपनी ही मिहनत से लोग सुखी और समृद्धिशाली बने हैं।

मैना—(सरलता से) तो उपाय ?

श्रीपाल—(शान्तिमुद्रा से) उपाय ?—उपाय सोचा जा चुका है। मैं परदेश जाना चाहता हूँ, विदेशों में अपने भाग्य की आजमाइश करूँगा! लौटने के बाद फिर सबको साथ लेता हुआ चम्पापुर जाऊँगा।

मैना—(अचरज के साथ) परदेश ? आप परदेश जाँयगे ? मुझे छोड़कर ? किस के सहारे ? कहाँ ? यह अप्रिय प्रसंग बन्द कीजिए प्रभो! मुझे वेदना होती है।

श्रीपाल—मेरे विचारों में बाधक न बनो, प्राणेश्वरी! मुझे धन-संग्रह के लिए विदेश जाना ही होगा। तुम यहाँ रहो। मेरी पूज्य माता—कुन्द प्रभा—जो एक मुद्दत से मेरी सूरत देखने को भटक रही थीं। तलाश करते-करते सौभाग्य से यहाँ तक आ पहुँची हैं। तुम्हारी धर्म भक्ति ने नीरोग होकर मुझे उनके पैर छूने का मौका दिया है। और अब मैं अपना वह भार तुम्हारे सिर सौंपता हूँ। तुम माँ की सेवा करना, सात सौ योद्धाओं पर शासन कर उन्हें संगठित करना।

मैना—(स्वगत) भगवान! यह क्या वज्रपात होरहा है ? (श्रीपाल से) स्वामी एक क्षण का वियोग न सह सकने वाली यह दासी कैसे अकेली रह सकेगी ? नहीं, यह न होगा—

मुझे भी ले चलिए। मैं छाया की तरह आपके साथ रहूँगी।

सह लूँगी भूख-प्यास को, मुँह से न कहूँगी।
नदियों के, पहाड़ों के सभी कष्ट सहूँगी॥
सीता की तरह जंगलों की खाक में रम कर—
मैं अपने राघवेन्द्र की सेवा में रहूँगी॥

श्रीपाल—(दुलार के साथ) यह हठ न पकड़ो—रानी! इस रास्ते में बहुत-सी ठोकरें हैं। तुम्हारा जाना कदापि सम्भव नहीं। सही यह है—कि तुम यहीं रह कर मेरी माँ की सेवा करो। यह मौक़ा न दो कि लोग कहें—माँ को अकेला छोड़ स्त्री को लेकर, बेटा विदेश चला गया।

मैं जाऊँगा विदेशों को, अकेले भाग्य को लेकर।
पढ़ूँगा क्या लिखा है इन, न मिटने वाले पृष्ठों पर॥
पुरुष हूँ, जब, मुझे यों, बैठ रहना ना मुनासिब है—
कहेंगे लोग कायर है, न पाऊँगा कहीं आदर॥

मैना—(आँसू पोंछते हुए) कब लौट सकेंगे?

श्रीपाल—(स्नेह के साथ) जल्दी ही लौटूँगा। मुझे दुःख होता है प्राणाधिके। कि तुम्हारे जैसी चतुर रमणी भी न्यायोचित मार्ग में रोकर बाधाएँ खड़ी करती है। वल्लभे! तुम जानती हो, यह दुनियावी मुहब्बत एक खोखली आशा है। जिसे आज हम प्यार करते हैं, कल उसी से आँखें लाल करते हैं। जो महाराज पहुपाल अपनी प्यारी पुत्री को एक कोढ़ी के साथ ब्याह सकते हैं। वही शादी होने के बाद पुत्री के लिए बेचैन नज़र आते हैं। किए पर पछताते हैं। रोते और चिल्लाते हैं। बताओ यह क्यों होता है?

मैना—(करुण-स्वर में) अहंकार और क्रोध से मुक्त होने पर—
प्रेम का देवता जो जाग उठता है।

श्रीपाल—फिर वही जागा हुआ, प्रेम दूसरा रूप रख कर सामने आता है—माँ और बाप दोनों बेटी के वियोग में रोते हुए दिन बिताते हैं। और एक दिन भगवान के मंदिर में अचानक तुम्हें मेरे साथ देख कर तुम्हारी माँ—निपुण सुन्दरी चौंक पड़ती है। सोचने लगती है—'भगवान! ऐसी कन्या की माँ कहाने के बदले अगर मैं बाँझ होती? जन्म लेने के पेश्तर अगर गर्भपात हो गया होता, तो कितना अच्छा होता। भाग्य की आड़ लेकर अपनी वाचालता प्रगट करने वाली दुराचारिणी आज कितनी प्रसन्न हो रही है?' और तब माँ की ममता में डूब कर तुम उनके पैर छूती हो, प्रणाम करती हो। लेकिन वह घृणा से मुँह फेर लेती हैं। तुम्हारी सूरत देखना उन्हें पसन्द नहीं। कहो—यह क्यों? कहाँ चला गया उनका प्रेम?

मैना—(दीन-स्वर में) कुल की मर्यादा और सतीत्व भंग होना किस कुलीन माँ-बाप को अच्छा लगा है? माँ ने जब यह जाना—कि मैंने कोई पाप नहीं किया, दुराचारिणी नहीं बनी। किसी दूसरे को अपना पति नहीं बनाया। वही रोग से कुरूप हो जाने वाला शरीर, भाग्य ने सुन्दर और नीरोग कर दिया है। तब वे कितनी प्रसन्न हुईं। उसी समय पिताजी को बुला कर, यह ख़ुशख़बरी सुनाई और आप के सौभाग्य पर कितना मोद माना, कितना प्रेम प्रगट किया?

श्रीपाल—कहना तुम्हारा ग़लत नहीं है। लेकिन फिर भी यह प्रेम का राग बड़ा पेचीदा राग है। इसे गाना सहज

नहीं। यह दुख देता है, सुख देता है, खुशी देता है, गम देता है। कोई इसकी थाह नहीं पा सका। इसे छोड़ने पर ही लोगों का कल्याण हुआ है। प्रेम मुझे भी प्राण-प्रिये कुछ कम नहीं है। दुख मुझे भी तुम्हें छोड़ कर जाने का हो रहा है। लेकिन कर्त्तव्य जो रास्ते की ठोकर बन कर आगया है। उसे कैसे टाला जा सकता है ?

भुला बैठा है जो कर्त्तव्य, वह जीवन गँवा बैठा।
कि अपने हाथ बहबूदी के जरिये को मिटा बैठा॥
भटकता ही रहेगा वह, मिलेगा रास्ता कैसे ?
जो अपनी अन्दरूनी रोशनी तक को बुझा बैठा॥

मैना—(दीनता-पूर्वक) लेकिन कर्त्तव्य के साथ-साथ उस दासी के जीवन की ओर भी देखिए, जो चातकी की तरह विह्वल, और कुमुदिनी की भाँति आशा पूर्ण नेत्रों से प्राणाधार की ओर निहारा करती है। जिसका जीवन दूसरे के हाथों बिक चुका है, जो स्वयं अपूर्ण है। क्या उसकी माँग को स्वीकार करना आपका कर्त्तव्य नहीं है ? (रोती है)

श्रीपाल—(दुख कातर होकर) रोती हो—आनन्ददायिनी ? मुझे तुम्हारा यह रोना बर्दाश्त नहीं। मैं कहता हूँ—तुम विवेक से काम लो। रो-धोकर पति के कार्य में अमंगल करना, तुम्हारे जैसी विदुषियों को शोभा नहीं देता। मानता हूँ कि गृहणी के प्रस्ताव को ठुक-राना, अन्याय है। लेकिन प्रस्ताव की उपयोगिता पर विचार करना उसके अधिकार की बात है।

मैना—(आँसू पोंछ कर) जाना ही तय किया है, तो वादा कीजिए कब लौटेंगे मैं उस दिन तक आपकी प्रतीक्षा में, आपके

नाम की माला जपती रह कर आशा के सहारे—दिन बिता दूँगी। इसके बाद अगर आप आएँगे, तो यहाँ मुझे न पायँगे।

श्रीपाल—कहाँ पाऊँगा, फिर ?

मैंना—(सरलता के साथ) जहाँ ममता के बन्धन को तोड़ कर, आत्म-कल्याण के इच्छुक पहुँच जाया करते हैं।

श्रीपाल—(आश्चर्य से) क्या तपाभूमि में ?

मैंना—(दृढ़ता से) हाँ ! मैं भगवान के चरणों में अपने को सौंप कर, विकास के मार्ग पर चलना सीखूँगी।

छोड़ूँगी महल-मकानों को, चाँदी-सोने को, हीरों को।
पुरजन परिजन घर वालों को चम्पापुर के बल-वीरों को॥
फिर एक वस्त्र से तन ढक कर, अपना संसार बसाऊँगी—
तोड़ूँगी आत्मिक-बल लेकर, मैं ममता की जंजीरों को॥

श्रीपाल—(प्रेम-पूर्वक) शुभानने ! मैं वादा करता हूँ, बारह वर्ष बाद इसी अष्टमी के दिन मैं ज़रूर आ मिलूँगा। तब तक तुम्हें मेरी प्रतीक्षा करनी चाहिए। (दीपक बुझ जाता है) यह देखो—दीन-दीपक प्रभात के आने पेश्तर ही, कूँच कर गया। उसे प्रभाकर का भय है। निर्बल हमेशा भयभीत रहते हैं। सुन्दरी ! मैं दल-बल ले कर शीघ्र लौटूँगा, तुम प्रसन्न होकर मुझे बिदा दो।

मैंना—(गद्‌गद् होकर) प्राणनाथ ! मैं प्रार्थना करती हूँ—मुझे भूलना नहीं। भाग्य आपका साथ दे यात्रा सफल हो।

(मैना सुन्दरी, श्रीपाल के चरणों में झुक जाती है।)

श्रीपाल—(उठाते हुए) सुखी रहना प्राण प्रिये ! माँ की सेवा करना। मैं जाता हूँ, प्रभात हो चुका है।

(श्रीपाल जाते हैं)

(पर्दा गिरता है)

नौवाँ दृश्य

(स्थान—भृगुकच्छपुर नगर का रमणीक उपवन। महाराज श्रीपाल वस्त्र बिछाए एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए गारहे हैं। फल-फूलों से बगीची महक रही है।)

गायन

टुक चेत ले इन्सान।
कहना मेरा मान मान ॥ चेत ले, इन्सान !
लुटता तेरा कोष। और तू खामोश।
अब तो तू उठकर। ढा दे नया कहर।
दुनियाँ तेरा धाम नहीं, मुक्ति तेरा थान।
चित-चेत रे इन्सान। कहना मेरा०
प्रभु नाम लिए जा। हँस-हँस के जिए जा।
मुश्किल हो या आमान। मिटते भी हों अरमान।
दुनियाँ तेरा धाम०—

श्रीपाल—(स्वगत) घर से चला, वत्स नगर आया। एक मनोहर बगीचे में देखा—सुन्दराकार व्यक्ति, मंत्र साधना कर रहा है और चित्त चंचल हो रहा है। मैंने कहा—'इस तरह सिद्ध नहीं होगा, पहले चित्त स्थिर करो।' वह बोला—'आप सहनशील हैं, चतुर हैं आप ही इस कष्ट को स्वीकार करलें, तो बड़ी दया हो।'—उपकार की भावना से मंत्र साधन किया—विद्याएँ सिद्ध हुईं, वह प्रसन्न हुआ। बोला—'कृपानिधान यह आप ही की कृपा का फल है। आप ही इस विभूति के स्वामी हैं।'—बहुत समझाया, बहुत विरोध किया। लेकिन दो महान् विद्याएँ—जलतारिणी और शत्रुनिवारिणी

लेनी ही पड़ीं। भाग्य की पहली ही मंज़िल में यह लाभ हुआ। अब देखना चाहिए आगे क्या होता है।

(वस्त्र बिछाकर लेटते हुए) बहुत दूर आ चुका। अब कुछ देर इस ठन्डी छाया में विश्राम लेना चाहिए। (सो रहते हैं।)

(दो सेवकों का प्रवेश)

सेवक नं० १—(श्रीपाल को ग़ौर देखे हुए) इस भृगुकच्छपुर का कोना-कोना छान डाला गया, बन-बन खोजा जा चुका, लेकिन कोई व्यक्ति हाथ नहीं लगा। क्या निराश होकर लौटना पड़ेगा ?

सेवक नं० २—(श्रीपाल की ओर देखते हुए) नहीं ! वह देखो हमारी मिहनत का फल सामने दिखाई दे रहा है। अवश्य ही यह सुन्दरकार मानव-मूर्ति हमारी सफलता का कारण होगी।

नं० १—(पास से देखते हुए) हाँ ! है तो सुन्दर। और अकेला भी। सचमुच हम चाहते हैं, वैसा ही है ! लेकिन।

नं० २—(चौंक कर) लेकिन क्या ?

नं० १—यही कि यह मनुष्य नहीं मालूम देता। शायद कोई देवता है।

नं० २ -(उपेक्षा से) देवता ? देवता यहाँ आकर सोयेगा, स्वर्ग में जगह नहीं रही ? मैं अभी जगाए देता हूँ—इस देवता को।

(पास जाता है, फिर डरकर दूर हट जाता है।)

नं० १—(जल्दी से) क्यों, जगाया नहीं ?

नं० २—(लज्जित होकर) नहीं जगा सका। सचमुच कोई प्रतापशाली व्यक्ति है। देवता हो, तब भी अचरज नहीं।

नं० १—(हताश होकर) तो अब क्या करना चाहिए ? खाली लौटते हैं तो मालिक की नाराजी और यहाँ हिम्मत दिखाने की सोचते हैं, तो मौत का डर।

चकरायेगा यह देख के हर कोई अक्लमन्द।
बढ़ने के लौटने के सभी रास्ते हैं बन्द॥

नं० २—(दूसरे से) तुम्हीं एक बार जगाने की चेष्टा न कर देखो ?

नं० १—मैं ? मुझ से न होगी। मैं पहले ही देखकर डर गया। कितना बलवान व्यक्ति है, जान पड़ता है कि जागने पर देवता भी इसे वश नहीं कर सकेंगे ?

नं० २—ठहरो, चुप रहो ! वह स्वयं जागा जाता है।

(दोनों भयभीत से, एक ओर हट जाते हैं। श्रीपाल जागते हैं। और स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखते हुए पूछते हैं।)

श्रीपाल—कौन हो, तुम लोग ? क्यों आये हो यहाँ ?

नं० १—(काँपते हुए) सेवक हैं, हम लोग। मालिक की आज्ञा को लेकर यहाँ तक आ पहुँचे हैं। कोई अपराध नहीं किया। आप की कृपा चाहते हैं,अपनी शरण दीजिए हमें।

श्रीपाल—(दुलार से) डरो मत ! मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। कहो, क्या आज्ञा है मालिक की ? कौन है तुम्हारा मालिक ?

सेवक नं० १—कौशाम्बी-नगरी के धन कुबेर धवलराय पाँच सौ जहाजों का एक काफ़िला लेकर व्यापार के लिए निकले हुए हैं। यहाँ आकर उनके जहाज़ तूफान का झोंका खाकर, पास की खाड़ी में जा पड़े। लाख चेष्टाएँ करने पर भी अब वह टस से मस नहीं होते। सभी उपायों से हार कर ज्योतिष का सहारा लिया गया। विद्वान ज्योतिषियों ने

बताया कि जल-देवों ने जहाजों को कील दिया है, जब तक एक सुन्दर, गुणवान् मनुष्य की बलि नहीं दी जाएगी, जहाज नहीं चल सकेंगे।

श्रीपाल—तो एक बेक़ुसूर का ख़ून बहाने के लिए मालिक ने तुम्हें आदमी तलाश करने को कहा है ?

सेवक १—(भीत-स्वर में) यहाँ के नरेश की अनुमति पाकर उन्होंने ऐसी ही आज्ञा हमें दी है। हम गुलामों को इशारे पर नाचना पड़ता है—वीर-पुरुष !

श्रीपाल—सत्य कहते हो ! (स्वगत) भाग्य-पथिक ! आगे बढ़ो, देखो भाग्य के रास्ते में क्या-क्या देखना-भोगना बदा है।

बढ़े जाओ उसी पथ पर, क़दम जिस पर उतारे हैं।
कि आसानी, परेशानी ये क़िस्मत के नज़ारे हैं।।
परायों का गिला कैसा ? मुक़द्दर जब बदलता है—
बदलते हैं वे सब, जिनको कि कहते थे—हमारे हैं।।

(सेवकों से) मैं तैयार हूँ। चलो, मुझे अपने मालिक के पास ले चलो।

कहो जाकर कि अपनी कामयाबी साथ लाए हैं।
दिया जो हुक्म था तामील उसकी करके आए हैं।।

सेवक नं० १—(हर्षित होकर) धन्य हो प्रभु !

हमारी दीनता पर आपने जो तरस खाया है।
हृदय ही जानता है हमने जो कुछ उससे पाया है।।
महापुरुषों से होता है, सदा उपकार दुखियों का।
उन्हें ही तो सताता है हमेशा प्यार दुखियों का।।

(दोनों श्रीपाल के साथ-साथ जाते हैं)

—: पटाक्षेप :—

दसवाँ दृश्य

[स्थान—सागर तट, जहाज खड़े हुए हैं। महाराज श्रीपाल शृंगार मण्डित, धवलराय के समीप खड़े हैं। कुछ धवलराय के साथी भी हैं। पूजा का थाल और एक नंगी तलवार लिए पुरोहित जी भी उपस्थित हैं।]

धवलराय—(सगर्व) उबटन-स्नान से शुद्ध, वस्त्राभूषण मंडित, एक सुन्दर, स्वस्थ, मानव-मूर्ति बलिवेदी पर प्रस्तुत खड़ी है। अब विलम्ब न कीजिए—पुजारीजी ! शीघ्र ही जलदेव को प्रसन्न कीजिए। (इशारा करता है, नैपथ्य में बाजे बजते हैं।)

(पुरोहित महा० श्रीपाल की गर्दन झुकाते हुए मंत्र पढ़ता और तलवार सिर पर रखता है।

श्रीपाल—(सिर उठाते हुए) ठहरो ! (वाद्य-ध्वनि बन्द हो जाती है।) मैं संघपति धवलराय से पूछना चाहता हूँ, कि उनका मक़सद जहाजों का चलाना है, या एक बेगुनाह की हत्या करना ?

धवलराय—(सप्रेम) जहाजों के चलने-भर से मतलब है—क्षत्रिय-पुत्र। मुझे किसी की बेकार जान लेने से कोई फ़ायदा नहीं।

श्रीपाल—(दृढ़ता के साथ) तो आप लोग जहाजों पर सवार हो लीजिए ! यक़ीन कीजिए कि आप को नर-रक्त से हाथ न रंगने पड़ेंगे।

जो हिंसा से नहीं रँगता है अपने पाक दामन को।
सदा ऊपर उठाती है, अहिंसा उसके जीवन को ॥

धवलराय—(स्वगत) अवश्य ही यह कोई पुण्य-मूर्ति है। अगर इसके द्वारा जहाजों का संचालन होता है, तो उसका मानी है कि यह आगे भी हमारे लिए

लाभ की चीज़ होगी। ऐसे व्यक्ति को परदेश मे साथ रखना बुद्धिमानी है। (श्रीपाल से) आर्य पुत्र! अगर तुम अपने प्रयत्न में सफलता पाते हो। तो एक प्रार्थना और भी तुम्हें स्वीकार करनी होगी।

श्रीपाल—(अचरज से) वह क्या ?

धवलराय—(स्नेह से सिर पर हाथ रखते हुए) यह, कि तुम्हें हमारे साथ चलना होगा। मुझे उम्मीद है, एक बुज़ुग की प्रार्थना का तुम ठुकरा न सकोगे।

श्रीपाल—(सिर झुकाकर) पुत्र को पिता की आज्ञा से कभी इनकार नहीं होता। लेकिन एक बग़ैर जाने-बूझे परदेशी का साथ रखने के पहले आप को सोच-समझ लेना चाहिए।

धवलराय—(दुलार के स्वर में) कैसी बातें करते हो—श्रीपाल ? मेरे ये बाल उम्र ने पकाए हैं, धूप ने नहीं! मैंने तुम्हें अपनी पहली नज़र में ही पहिचान लिया—कि 'तुम क्या हो ?' और अब तुम्हें पुत्र बनकर, मेरी सहायता करनी होगी। इस अपार सम्पत्ति का स्वामित्व तुम्हारे लिए ही होगा। विधाता ने अब तक मुझे पुत्र नहीं दिया था! लेकिन आज ख़ुशी का दिन है कि मैं अपने प्यारे धर्म-पुत्र को सामने देख रहा हूँ।

श्रीपाल—(सविनय) जहाज पर सवार हो लीजिए, पिताजी!

[सभी लोग जहाजों पर सवार हो जाते हैं, सिर्फ श्रीपाल खड़े रहते हैं। वह सिद्ध-मंत्र का शुद्ध भावों से स्मरण करते हैं, और जहाज को ज़रा पैर की ठोकर मारते हैं, जहाज चलने लगता है। सब जय-ध्वनि से आकाश गुँजाने लगते हैं। यात्री-दल (जोर से) 'दीन-रक्षक श्रीपाल की जय हो।']

[श्रीपाल जहाज पर चढ़ते हैं। धवलराय के समीप बैठे दिखाई देते हैं। दोनों प्रसन्न मुख हैं।]

पटाक्षेप

ग्यारहवाँ दृश्य

[स्थान—समुद्री मार्ग, जहाज चल रहे हैं। रेलिंग पकड़े महाराज श्रीपाल खड़े हुए समुद्र के पानी को ओर देख रहे हैं। सहसा दूसरे जहाजों से हाहाकार सुन पड़ता है। – चीखें, रोने का स्वर, 'बचाओ-बचाओ।'—की आवाज़। श्रीपाल अचरज के भाव से इधर-उधर देखते हैं।]

श्रीपाल– (स्वगत) क्या हुआ ? यह चीत्कार कैसा ? समुद्र शान्त है, फिर यह तूफ़ानी-हाहाकार-क्यों ? क्या यात्रियों पर कोई नया-संकट आया ? कुछ पिताजी का अमंगल तो नहीं हुआ ? (रुककर) अरे, सभी वणिक मेरी ओर चले आ रहे हैं, क्यों ? कारण क्या है ?

वणिक-दल—(नेपथ्य में आते हुए, विह्वल-स्वर में) बचाइए, बचाइए दीन-रक्षक—श्रीपाल—बचाइए।

श्रीपाल—(दृढ़ स्वर में सान्त्वनात्मक) घबराइए नहीं। साफ़-साफ़ कहिए क्या हुआ है ?

एक वणिक—(काँपते-काँपते स्वर में) समुद्री-डाकुओं ने छापा मारा, युद्ध में हमें पराजित किया और हमारे संघ-नायक को बाँध ले गए।

श्रीपाल—(विस्मय से) हैंय ! बाँध ले गए ? पिताजी को लुटेरे बाँध ले गए ? और मुझे पता तक न चला। इतनी बड़ी घटना हो गई—और सुपने की तरह चुपचाप ? लेकिन जाँयगे कहाँ ? दुष्टों के बीच में अधिक देर

तक पिताजी नहीं रह सकते। (व्यग्रता से दो क़दम जाने के लिए बढ़ते हैं।)

वणिक—क्या अकेले जा रहे हैं? ठहरिए—वे खूँख़ार डाकू इस लायक़ नहीं हैं। आपके जाने पर तो हमारा रहा-सहा आधार भी टूटता है। हम किसके भरोसे यात्रा पूर्ण कर सकेंगे?

श्रीपाल—(मुस्करा कर) चिन्ता न कीजिए। आपका संघ नायक ही आपकी यात्रा पूर्ण करायेगा। विश्वास कीजिए—अन्यायी-लुटेरे बार-बार विजय नहीं पाया करते। न्याय के मुक़ाबले में अन्याय हमेशा हारता है।

नज़र कर देखलो अपनी, गगन पर और जल-थल पर।
नहीं कोई फला-फूला, कभी अन्याय के बल पर॥

मुझे जाने दीजिए। आप लोग बेफ़िक्री के साथ विराजिए। अभी लुटेरों के युद्ध-पोत अधिक दूर नहीं गए होंगे। मैं शीघ्र ही लौटने की आशा रखता हूँ।

वणिक—(चिन्तातुर होकर) लेकिन क्षमा कीजिए—पूजनीय! कि आपका अकेला जाना, हमें अज्ञात-आशंका की ओर ले जा रहा है। लुटेरों की खौफ़नाक-दिलावरी यह कहने के लिए लाचार करती है कि आप अकेले न जाँय।

ग़ुलामो में छिपा है हर घड़ी अपमान का ख़तरा।
डराता है समुद्री-राह में, तूफ़ान का ख़तरा॥
है मयख़ाने में रहता इज़्ज़तो-ईमान का ख़तरा।
कि मक्कारों की सुहबत में हमेशा जान का ख़तरा॥

श्रीपाल—(हँस कर) मानता हूँ कि आप लोगों की बातें ग़लत नहीं हैं। लेकिन यह ख़याल कर सन्तोष कर लीजिए कि मैं अकेला नहीं जा रहा। मेरे साथ मेरा विश्वास है। मेरी हिम्मत है।

हिम्मत है जिसके सीने में,
खतरे की क्या परवाह उसे ?
पाई है फतह हमेशा ही,
कर सका कौन गुमराह उसे ?
अपनी हिम्मत को लेकर ही,
नाहर, 'नाहर' कहलाता है—
बे फौज, ताज भी; कहती है—
दुनिया जंगल का शाह उसे ॥

देरी न कीजिए—जाने दीजिए मुझे ! देरी करने का अर्थ होगा—संघपति की तकलीफों का समय देना।

न इतनी शक्ति होती है, दुराचारी लुटेरों में।
कि जितना बल छिपा है, मुल्क के आज़ाद-शेरों में ॥
उधर रहती है ताकत पाप की, या नारकीपन की—
इधर इन्सानियत रहती है, हरदम दिल के डेरों में ॥

वणिक-दल—(हर्षित होकर) धन्य हो वीरोत्तम !
चले थे यान तब भी, आपकी ही मिहरबानी से।
भरोसा है, बचेंगे; आपकी ही जाँ फिशानी से ॥
पधारिए ! भगवान आपकी सहायता करें।

(महाराज श्रीपाल डाकुओं की क़ैद से धवलराय को छुड़ाने के लिए प्रस्थान करते हैं। वणिक-दल देखता रहता है)

—: पटाक्षेप :—

बारहवाँ दृश्य

(स्थान—समुद्री-मार्ग, जहाज़ का खुला हिस्सा, जहाज चल रहे हैं। एक कुर्सी पर धवलराय, दूसरी पर महाराज श्रीपाल बैठे हैं। सामने कुछ लुटेरे रस्सियों से बँधे खड़े हुए हैं। कई प्रतिष्ठित-वणिक भी बैठे हैं। लुटेरों के मुँह पर करुणा, श्रीपाल के शान्ति और बाक़ी सभी के क्रोध से भरे हुए हैं)

श्रीपाल—(शान्ति चित्त, धवलराय से) कहिए; पिताजी ! इन क़ुसूरमन्दों को क्या सज़ा तजवीज करते हैं ?

इन्हें बेवश कर दिया है; ज़ुल्म के अञ्जाम ने।
कर रहे हैं साफ़ ज़ाहिर, ये जहाँ के सामने॥
है बुरा जो काम उसका कब भला अञ्जाम है।
इसलिए ही तो ज़माने में हुआ बदनाम है॥

धवलराय—(व्यंग-स्वर में)

ये हैं वह नर्क के कीड़े, जो धनिकों को सताते हैं।
ये हैं वह पाप के पौधे, जो काँटों को उगाते हैं॥
ये हैं वह भेड़िये जो आबरू को लूट खाते हैं।
ये हैं वह खाट के खटमल, जो सोतों को जगाते हैं॥
सितमगर हैं, ये ख़ूनी हैं, गुनाहों से रँगे दिल हैं।
सज़ाये मौत दी जाये, ये बेशक इसके काबिल हैं॥

श्रीपाल—(वणिकों से) मैं चाहता हूँ—आप लोग भी अपनी राय दें कि इनके साथ कैसा सलूक किया जाय।

वणिक नं० १—(तेज़ स्वर में) सलूक ? वही सलूक किया जाय—जो शेर हिरनों के साथ करता है, बिल्ली चूहों के साथ करती है, और छिपकली का परवानों के साथ होता है।

ये हैं वे मर्द, जो मर्दानगी अपनी लजाते हैं।
रहम की राह से हटकर, नरक की राह जाते हैं॥

निकलकर ये अँधेरे में, प्रजा पर क़हर ढाते हैं।
कि मुरदे के गले पर ही, सदा खंजर चलाते हैं॥
डुबोदो इनको दरियामें, मिटादो इनकी हस्ती को।
मिले सुख-चैन जिससे, देशकी हर घर-गृहस्ती को॥

बणिक नं० २—(जोश के साथ) लुटेरों की हस्ती अमन के लिए एक खतरा है, दिलो मुरादों के बीच में एक खौफ़नाक जलजला है। मुट्ठी में आने के बाद इन्हें कड़ी से कड़ी सजा देना, इन्सानी-होशियारी का तकाजा है। ये जहरीले-साँप हरगिज़ इस लायक़ नहीं, कि दूसरों के डसने के लिए इन्हें छोड़ दिया जाय।

बणिक नं०३—(क्रोधित आकृति के साथ)।

शकल-सूरत से जाहिर है, कि हैं इन्सान के पुतले।
मगर ऐमाल कहते हैं कि हैं शैतान के पुतले॥
सजा मिल जाय इनको अपनी शैतानी-शरारत की।
जिन्होंने ज़ालिमाना हरकतों से नींद गारत की॥

धवलराय—(श्रीपाल से स्नेह के स्वर में) लेकिन कुँवर साहेब की क्या सम्मति है, यह अभी तक सामने नहीं आया?

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) खेद है कि मेरी राय आप लोगों की राय से इत्तफ़ाक नहीं करती! मैं इन्हें वह सजा देना पसन्द करूँगा जो आप लोगों के कयास में भी नहीं है! जो इन लोगों के हृदय को—कारनामों को—बदलने की ताक़त रखती है।

धवलराय—(प्रसन्न चित्त होकर) बुद्धिमान राजकुमार! तुम्हीं ने इन्हें पराजय देकर बन्दी बनाया है और अब

तुम्हीं इनके लिए सज़ा भी तजवीज़ करो। इनका इन्साफ़ तुम्हारे ही सुपुर्द है।

श्रीपाल—(अधिकारी के स्वर में) अगर इनका न्याय-भार मुझे ही सौंपा जाता है। तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। (नैपथ्य की ओर देखते हुए–प्रहरी से) इन सभी क़ैदियों के बन्धन खोल दो।

प्रहरी—(प्रवेशकर) जो हुक्म।

[प्रहरी सब चोरों के बन्धन खोलता है! वे सब भयभीत से देखते-भर रहते हैं। बाक़ी उपस्थित-जन दंग रह जाते हैं।]

श्रीपाल—(प्रहरी से) स्वागत-सत्कार की सामिग्री लाओ।

[प्रहरी सिर नवाकर जाता है, फिर बारी-बारी से सेवक-जन स्वागत सामिग्री लाते जाते हैं। महा० श्रीपाल स्वयं अपने हाथों से खुश होते हुए पान-सुपारी, इलायची, इत्र वगैरह देते हैं। फिर सभी को सुन्दर बेश-क़ीमत-वस्त्र पहनाते हैं। वे अचरज-भरे, शर्मिन्दा होते हुए पहनते हैं। धवलराय वगैरह सब किंकर्त्तव्य विमूढ़ से देखते रहते हैं। मुँह पर क्रोध की हल्की आभा है]

श्रीपाल—(धवलराय वग़ैरह की ओर तवज्जह न देते हुए; लुटेरों से) वीरो! मुझे रंज है, कि मैंने तुम्हें बाँधकर, कष्ट दिया है! तुम्हारा अपमान किया है। अगर आप लोग हमारे संघ-पति के साथ ऐसा ही बर्ताव न करते, तो निश्चय ही आपके लिए भी यह घड़ी न आई होती। जो कुछ मुझे, इच्छा न होने पर भी, करना पड़ा है, मैं उसके लिए बहुत दुखी हूँ—और सिर झुकाकर माफ़ी चाहता हूँ।

लुटेरों का समूह—(गद्‌गद् स्वर में, पैरों पर गिरते हुए) उदार-पुरुष! हमें क्षमा करो।

श्रीपाल—(सबको छाती से लगाकर विदा करते हुए) क्षमा माँगकर

नाराज़ी ज़ाहिर न करो। मैंने तुम्हें क़ैदी बनाया था और अब आज़ाद करता हूँ। आदर पूर्वक विदा करता हूँ!

[सभी लुटेरे एक-एक कर सिर झुकाए—लज्जित, संकोचित—विदा हो जाते हैं। तब धवलराय श्रीपाल से—]

धवल—(खिजाते हुए) राजकुमार! यह तुमने क्या किया?

श्रीपाल—(संक्षेप में) न्याय,—इन्साफ़!

धवल—(ज़रा तेज़ स्वर में) मुश्किल से पकड़ में आने वाले लुटेरों को इस तरह मुट्ठी में आजाने पर भी छोड़ देना, इन्साफ़ नहीं मूर्खता हो सकती है।

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) भूल करते हो पिताजी! ये बदनसीब मुट्ठी में नहीं आये थे शरण में आये थे। शरण में आये हुए का सत्कार करना, उसे अभय देना, मूर्खता नहीं बुद्धिमानी की बात है। यह हमारा ग़रूर है, अहंकार है कि हम विरोधी को पराजित कर, बन्दी बनाकर, उसे मुट्ठी में आया समझते हैं। सचाई यह है, कि ज़ालिमों में कोई किसी की मुट्ठी में नहीं आता, सिर्फ़ हार से पैदा होने वाली हालत जीते हुए की पनाह में जाने के लिए उसे मजबूर कर देती है।

वणिक नं० १—(दुखित-स्वर में) माना कि आपका कहना ग़लत नहीं है। लेकिन, उन्होंने जो हमारे संघपति के साथ बेअदबी की है, दुश्मनी काम में लाई है; कमीना बर्ताव किया है। क्या उसका यही मुनासिब बदला है कि वह हमसे ख़ातिरदारी के साथ विदा हों। हँसते हुए घर लौटें।

वणिक नं० २—(झुँझलाते हुए) कुँवर साहेब! मान लीजिए कि आपने एक ऐसे साँप को दूध पिलाया है,

जो अपने ज़हरीले दाँतों का स्तैमाल कर चुका है। एक ऐसे दुश्मन पर रहम किया है, जो हरगिज़ इसके लायक नहीं था। .कुसूरवार को सज़ा देना, इन्साफ़ है। मुलज़िम को छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं, ज़ुल्मों को बढ़ने का मौक़ा देना है।

धवलराय—(दृढ़-स्वर में) राजकुमार! अभी तुमने दुनिया का ढंग नहीं देखा, उम्र की नादानी अभी भो तुम मे मौजूद है। इन पके हुए सफ़ेद बालों से पूछो कि न्याय, अन्याय, पाप, पुण्य किसे कहते हैं? तुम जिन्हें शरणागत-मित्र कहकर रहम की चीज़ बना रहे हो, वहाँ मेरा तर्जुबा कहता है, कि वह अकेले मेरे ही दुश्मन नहीं, हरएक पैसेवाले के—हरएक शरमायेदार के जानी दुश्मन हैं।

बिना ही दुश्मनी के दुश्मनी पहिचान लेते हैं।
ये वे दुश्मन हैं, जो पैसे को ख़ातिर जान लेते हैं॥

श्रीपाल—(दृढ़ता से) दुश्मन?—

इन्हें दुश्मन न समझो, ये मुक़द्दर की कमाई है।
ग़रीबी, तंगदस्ती ही, इन्हें इस ओर लाई है॥

पिताजी! अगर आप इन्हें दुश्मन ही मानते हैं तो मैं कहूँगा—बड़े से बड़े दुश्मन के साथ जो सलूक किया जाना चाहिए—जो सज़ा देनी चाहिए—मैंने वही सलूक और वही सज़ा इन्हें दी है।

धवल—(अचरज से) छोड़ देना, माफ़ कर देना, ख़ातिर से पेश आना; क्या यही दुश्मन को दी जाने वाली सजाएँ हैं?

श्रीपाल—(दृढ़ता से) हाँ! इनसे दुश्मन दुश्मन नहीं रहता,

दोस्त बन जाता है। बुरा बुरा नहीं रहता, अच्छे रास्ते की ओर क़दम उठाता है। उसका दिल बदलने लगता है, हृदय में परिवर्तन हो जाता है। और तब उसका शरीर ही नहीं, हृदय तक मुट्ठी मे आ जाता है।

जकड़ना दुश्मन को बेड़ियों से—
न समझो इसको कड़ी सज़ा है।
पकड़ के दुश्मन को छोड़ देना—
असल मे सब से बड़ी सज़ा है॥

धवल—(गंभीरता मे) राज पुत्र! ये तुम्हारी कल्पना की बातें हैं, सपने की रंगीन तस्वीरें हैं। असलियत इनसे जुदा चीज़ है। बुराई हमेशा बुराई है, उसे भलाई नहीं कहा जा सकता।

श्रीपाल—न कहा जाय। लेकिन उसे बदला ज़रूर जा सकता है।

तक़ाज़ा है हरदम ये इन्सानियत का—
हलाहल का ऐवज मिठाई मे देना।
सबक़ साधुता का सिखाता यही है—
बुराई का बदला भलाई मे देना॥

वणिक नं० १—(उपेक्षा से) साँप का दूध पिलाकर अमृत की ख्वाहिश करना, समझदारी की बात नहीं है—कुँवर साहेब! मानना होगा कि लुटेरों को छोड़कर, आपने उन समुद्री तिजारती मुसाफिरों के रास्ते मे वह ठोकर ज्यों की त्यों पड़ी रहने दी है, जिसने हमारे सघपति की आबरू को चोट पहुँचाई है।

धवल—(गंभीरता से) बेशक! राजपुत्र ने यह एक बड़ी

ग़लती की है, जो राजनीति को बालाएताक़ रखकर नराधमों को सुधरने की आशा पर छोड़ दिया।

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में)

दोस्त बन जाते हैं हर रोज़ के लड़ने वाले।
शाह बनते हैं यहाँ पैरों में पड़ने वाले॥
यह तो दुनिया के करश्मे हैं तअज्जुब न करो—
हमने देखा है सुधरते हैं बिगड़ने वाले॥

पिताजी! आप जिसे ग़लती कहते हैं, वहाँ मेरा ख़याल है कि मैंने सही किया है! बिगड़े हुओं को सुधारना, सुधरे हुओं के अधिकार की चीज़ होना चाहिए! उन्हें बिगाड़ के रास्ते पर ही ढकेलते जाना, अव्वल नम्बर की क्रूरता है।

धवल—(तमक कर) देखना है, तुम्हारा साधु-व्यवहार उन्हें सुधार की चोटी पर चढ़ाता है, या बिगाड़ के पाताल में ढकेलता है? (इसी समय 'जय' 'जय' की आवाज़ें सुनाई देती हैं) हँय! यह क्या? अब की बार बदनसीबी कौन-सा रूप रखकर आयी?

प्रहरी—(प्रवेश कर) वह लुटेरों का गिरोह फिर सेवा में हाज़िर होना चाहता है।

धवलराय तथा वणिक नं० १—(अचरज से) ऐं, क्या लुटेरे फिर आ गए?

श्रीपाल—(प्रहरी से) जाओ, उन्हें सन्मान पूर्वक ले आओ।

(प्रहरी जाता है)

[नैपथ्य से 'महाराज श्रीपाल की जय!' सुनाई देती है। फिर एक-एक डाकू आता है—हाथ में थाल, थाल में रत्न राशि! सब क्रम वार खड़े हो जाते हैं, फिर दल-पति महाराज श्रीपाल के गले में

रत्न-हार डालता है। सिर पर मुकुट रखता है। धवलराय वगैरह सब चकित रह जाते हैं]।

श्रीपाल—(स्नेह-पूर्ण) भाइयो! क्यों बेकार कष्ट उठाते हो?

दल-पति—(नरम-स्वर में) कष्ट? कष्ट नहीं, दिल की ख़ुशी जाहिर कर रहे हैं—पुरुषोत्तम! हम किसी योग्य नहीं है। जो कुछ अपराध हुए हैं, क्षमा कर (नैपथ्य की ओर उँगली उठाते हुए) ये रत्नों से भरे हुए सात जहाज़ इन चरणों की भेंट हैं, स्वीकार करें।

श्रीपाल—(अचरज से) इतना धन? इतनी दौलत मुझे न दो भाई!

दलपति—(दीनता से) हम कुछ देने लायक नहीं हैं, यह तुच्छ भेंठ जो सेवा में ला सके हैं—इसे स्वीकार कीजिए! आपकी संगति से जो आज हमने पाया है, वह इस से कहीं ज्यादह है।

जो दौलत मिली, मुक़ाबिल में है उसके नख्ले ताज नहीं।
ताक़त बयान की इधर नहीं, उस तरफ़ कोई अल्फ़ाज़ नहीं॥
लोहा कहकर मत ठुकराओ, मत समझो दीन-ग़रीब उसे।
पारस को छूने का मौक़ा, कुदरत से हुआ नसीब जिसे॥

[बारी-बारी से हर लुटेरा महाराज श्रीपाल के क़दमों में गिरता है। वे मुस्काते हुए उसे उठाते हैं और बिदा करते हैं। सब के चले जाने पर धवलराय और वणिक-दल]

ध० वणिक—(ज़ोर से) सम्राट् श्रीपाल की जय हो!

—पटाक्षेप—

तेरहवाँ दृश्य

[स्थान—हंस द्वीप, सहस्रकूट नामक देव-मंदिर का प्रवेश द्वार ! द्वार बन्द है, बाहर पहरेदार बैठे हुए हैं। श्रीपाल का गाते हुए प्रवेश।]

गायन

कैसे मिलोगे, प्रभूजी (तुम) कैसे मिलोगे ?
मन में मेरे भावना। तुम कैसे मिलोगे !
जान गया मैं तुम्हारा आँख इशारा।
पहिचान गया मैं तुम्हारा आँख इशारा ॥
धर्म का सन्देश क्या दुनियाँ को न दोगे ?
मन मेरे भावना—तुम कैसे—
ढूँढ़ लिया मैंने तुम्हें प्रेमहियां में !
हृदय की पाँखड़ियों में !
भक्त की आँखों से कभी छिप न सकोगे।
मन में मेरे—

श्रीपाल—(स्वगत) हंस द्वीप ! रत्नगर्भा का यह वह मुक़ाम है, जहाँ रत्नों की कमी नहीं, चाँदी-सोने की खानें साधारण चीजों की तरह आदर पाती हैं, मोती-माणिक चावलों की तरह बहुतायत से पाये जाते हैं। यह भाग्यवानों का देश है, जहाँ की भूमि पर खड़े होने का आज भाग्य ने मुझे मौक़ा दिया है। (पहरेदारों से) सैनिको। देव-मंदिर का द्वार बन्द क्यों है ?—खोल दो, मैं भगवान के दर्शन करने की अभिलाषा लेकर आया हूँ।

सैनिक—(नम्रता से) मॉफ कीजिए—वीरवर ! हम आपकी आज्ञा पालन में सर्वथा असमर्थ हैं। क्यों कि देव-मंदिर के वज्रमयी किवाड़ बहुत दिन से इसी तरह बन्द हैं।

अनेक योद्धा अपनी ताक़त आज़मा चुके, लेकिन द्वार नहीं खुला।

श्रीपाल—(ताज़्ज़ुब से) नहीं खुला ?

सैनिक—(दृढ़-स्वर में) हाँ नहीं खुला ! और खुलने की प्रतीक्षा में ही एक अर्से से हम लोग मन्दिर के द्वार पर तैनात हैं।

श्रीपाल—(अचरज से) क्यों ?

सैनिक—(गम्भीरता से) इसलिए कि इन बन्द किवाड़ों में हमारे देश के प्रतापशाली महाराज कनक केतु की पुत्री रयन-मंजूषा कुमारी का भाग्य बन्द है। संसार विरक्त साधु ने निमित्त-ज्ञान द्वारा बतलाया है, कि जो महा-मानव इस वज्र-द्वार को खोलने में समर्थ होगा, वही राजकुमारीजी का पाणिग्रहण करेगा।

सैनिक नं० २—(सनम्र) क्या हम लोग पूछ सकेंगे कि श्रीमान् कहाँ से और क्या उद्देश्य लेकर पधारे हैं ?

श्रीपाल—(गंभीरता के साथ) अवश्य ! कोशाम्बी के लक्ष्मीपति धवलराय के पाँचसौ जहाज़ व्यवसाय के लिए घूमते-फिरते आज यहाँ के समुद्र तटपर आ लगे हैं, मैं उन्हीं जहाज़ों का एक यात्री हूँ ! और सैर करने के लिए यहाँ उतर पड़ा हूँ। (मन्दिर की ओर बढ़ते हुए) तब क्या देव-दर्शन से निराश होकर मुझे लौटना पड़ेगा ?

सैनिक—(दुःखित-स्वर में) मजबूरी है—वीरोत्तम ! कि द्वार को आज तक कोई खोल नहीं सका।

[श्रीपाल चुप रहते हैं, और द्वार के समीप जाकर सिद्ध-चक्र-व्रत का आराधन करते हुए किवाड़ों से हाथ लगाते हैं। किवाड़ खुल जाते

हैं। और वह प्रसन्नमुख—'जय भगवन्! जय भगवन्!' करते हुए भीतर आते हैं। पहरेदार आश्चर्य चकित देखते रहते हैं।]

सैनिक—(ताज्जुब से) यह क्या ? सचमुच वही भाग्यशाली पुरुष है, जिसके इन्तजार में हमारी आँखें और हमारे महाराज का दिल बेचैन रहा करता था।

सैनिक नं० २—(दृढ़ता के साथ) बेशक! यह वही मानवमूर्त्ति है, जो देवताओं जैसी सुन्दरता, और शक्ति लेकर वज्रद्वार खोलने में कामयाब हुई है।

सैनिक—(उतावली के साथ) तो तुम यहीं ठहरो। मैं इन्तजारी में मुब्तला रहने वाले महाराज को यह सु-सम्वाद सुनाने जाता हूं। (जाता है)

सैनिक नं० २—(स्व-गत) आज तपस्वी की साधना पूर्ण हुई, कुमारी को कुमार मिला, और प्रजा को आनन्द! महाराज की प्रसन्नता आज हम लोगों के लिए चिन्तामणि, कल्पवृक्ष और काम धेनु से बढ़कर साबित होगी।

उदय होगा हमारा भाग्य भी, इस भाग्यशाली से।
चमक उठता है जैसे विश्व सारा अंशुमाली से॥

(नेपथ्य में बाजों की ध्वनि) हैंय! महाराज आरहे है? इतना शीघ्र! बेटी का विवाह, पिता के हृदय में कितनी उतावली, कितनी चिन्ता और कितना असन्तोष भर देता है, यह आज देखने को मिल रहा है।

जलती दोजख की आग वहाँ, खोकर दिलकी आजादी को।
जिसके घर बैठी बेज़ुबान, बेटी जवान हो, शादी को॥

[महाराज कनक केतु दरबारियों सहित प्रवेश करते हैं, मुँह पर प्रसन्नता और उत्सुकता दोनों प्रगट होरही हैं।]

कनककेतु—कहाँ है ? कहाँ है—मेरी प्रतीच्छा का मधुर फल ? आशाओं का सुनहरा संसार ?

सैनिक—(सिर झुकाकर) महीपति ! वह पुण्याधिकारी वीरोत्तम वज्र कपाटों को खोलते हुए प्रभु-वन्दना के लिए भीतर गए हैं। (देवद्वार की ओर संकेत पूर्वक) वह देखिये—सौम्यमूर्ति वापस लौट रही है।

श्रीपाल—(प्रवेश करके) हंसद्वीप-नरेश को प्रणाम !

कनककेतु—(छाती से लगाते, अभिवादन में झुकते हुए)

बड़ी ख़ुश क़िस्मती से आज का दिन देख पाया है।
जो अरमानों की दुनिया में, ख़ुशी का रंग लाया है॥
बुझी आँखों में फिर से आज मेरे रोशनी आई—
कि दिल को स्वर्ग की रौनक़ ने आकर जगमगाया है॥

आर्यपुत्र ! तुम्हारे शुभागमन से जो प्रसन्नता मुझे मिल रही है, वह शब्दों की पकड़ से बाहर है। और अब उस प्रसन्नता को मैं स्थाई बना देने की अभिलाषा रखता हूँ। कृपा कर सेवक की कुटिया को चरण-रज से पवित्र कीजिए।

श्रीपाल—(नम्र होकर) महीपति ! स्वागत-सत्कार के लिए मैं कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। और जानना चाहता हूँ कि आपकी अभिलाषा क्या है ?

कनककेतु—अभिलाषा ? अब उसे अभिलाषा कहना उचित नहीं, वह एक निर्णय है ! भाग्य की रेखा की तरह अमिट ! और उसका रूप है—मेरी कन्या रयन मंजूषाकुमारी की आपके साथ शादी।

श्रीपाल—(कुछ विस्मय के साथ) शादी ?

कनक०—(दृढ़ता के साथ) हाँ, शादी ! भाग्य ने पहले ही दोनों का वरण कर दिया है, सिर्फ आपके आने का विलम्ब

था। और आपके आने की सूचना देना वज़ीर का काम था। मालूम होना चाहिए कि भविष्य-ज्ञाना योगीश्वर ने मुझे पहले ही बता दिया है। चलिए, विलम्ब न कीजिए।

श्रीपाल—(स्वगत) भाग्य ? मैं मानता हूँ तू एक बड़ी ताक़त है ।

तू हमेशा मनुष्य से चार क़दम आगे चलता है।
नहीं जो अक्ल में आता, उसे तू कर दिखाता है।
करिश्मा-सा दिखाकर, दिल को हैरत में डुबाता है॥
सुधा बनता है तब दिल में, ख़ुशी का रंग लाता है।
ज़हर जब बन के आता है, तो लाखों ज़ुल्म ढाता है॥

(प्रगट) चलिए—पूज्यवर ! लेकिन यह सोच लीजिए कि आप जिसे अपनी प्यारी कन्या देने जा रहे हैं, वह एक अपरिचित-यात्री के सिवा और कुछ नहीं है।

कनक—(प्रेम के साथ) सत्य पर पर्दा न डालिए कुँवर साहेब ! वन्दनीय-साधु ने मुझे पहले ही बता रखा है—कि 'कुछ नहीं' कहने वाला व्यक्ति ही 'सब कुछ' बनेगा। चलिए दास की सेवा स्वीकार कीजिए।

(सब लोग जाते हैं)

—: पटाक्षेप :—

चौदहवाँ दृश्य

[स्थान—समुद्री-मार्ग, जहाज के एक भाग में पलंग पड़ा है। उस पर धवलराय लेटे हैं, मुँह पर वेदना, बदहवासी अंकित हो रही है। समीप कुर्सियाँ पड़ी हैं—जिन पर प्रमुख वणिक तथा श्रीपाल बैठे हैं। बातें चल रही हैं।]

श्रीपाल—(कातर-स्वर में) छिपाइए नहीं पिताजी ! रोग को

छिपाना, मौत को निमन्त्रण देना होता है। बोलिए आप के शरीर पर किस रोग का आक्रमण हुआ है? यकायक कौन-सी बीमारी को अपनी शैतानियत दिखलाने की ख्वाहिश पैदा हुई है?

धवलराय—(कराहते हुए) चिन्ता न करो—राजकुमार! मैं शीघ्र अच्छा हो जाऊँगा। तुम्हें नहीं मालूम—मुझे जो वायु-रोग बहुत दिनों से सताता आ रहा है, यह उसका दौरा शुरू हुआ है। चार-छः महीने पीछे हमेशा मुझे ऐसे दौरे आया करते हैं, कोई चिन्ता-जनक नहीं है। तुम जहाजी बेड़े की देख-रेख करो, मेरी फ़िक्र छोड़ दो।

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) आप उस उस ओर से निश्चिन्त रहिए—पिताजी! कोई हानि न होने पायगी। आप सिर्फ़ अपने इलाज की ओर तवज्जह दीजिए। और जो सेवा मेरे योग्य हो, मुझे कहिए।

धवलराय—(बेचैनी से करवट लेते हुए) तुम्हारा ही भरोसा रखता हूँ, राज-पुत्र! तुम्हींने मेरी मुश्किलों को आसान बनाकर मुझे जिन्दगी भर के लिए अहसान-मन्द किया है। (स्नेह से) जाओ, राजकुमार! मेरे लिए चिन्ता न करो! मैं इलाज कर रहा हूँ, जल्दी ही आरोग्यता मुझे मिलेगी। (श्रीपाल अभिवादन कर जाते हैं।)

धवलराय—(स्वगत) आरोग्यता मिलेगी? कौन जानता है—आरोग्यता मिलेगी या मौत? हैवानी तूफ़ान में, इन्सानियत का जहाज चक्कर काट रहा है। कौन कह सकता है—मंजिले-मक़सूद तक पहुँचेगा, या दरिया में डूब कर रहेगा (रुककर) लेकिन बात

अब वश की नहीं है ! आग लग चुकी है, धुँए को रोकना क़ाबू के बाहर जा चुका है ।

दिखायेगा मुक़द्दर जो उसे हँस हँस के देखूँगा ।
ये ज़ख्मी दिल का कहना है—क़दम पीछे नहीं दूँगा ॥
किया जिसने मुझे घायल, वो क़ातिल छिप नहीं सकता—
कि अपनी जाँ लगा कर भी मैं उसका हुस्न चक्खूँगा ॥

नेकराय—(ताज़्जुब से) इस उम्र में यह बीमारी ? संघपति ! पूछना चाहता हूँ—कि किस सितमगर की तीरे-नज़र ने यह क़हर ढाया है । समझदार और बूढ़ी अक़्ल पर शैतानियत का बुर्क़ा डालने वाली वह कौन-सी हूर है, जो वहिश्त से उतर पड़ी है ?

धवल—(बेसुध होकर) हूर ? सचमुच वह हूर है । परी है, किन्नरी है; तिलोत्तमा और रम्भा है । उसका रूप, धूप की तरह चमहदार है । चाँद की तरह बहारदार है ! और मादक मदिरा की तरह मस्त बना देने वाला है । आह ! उसे एक झलक देखा है, और दिल मसोस कर बैठ गया हूँ ।

शराबे-हुस्न थी जिसने मुझे मद होश कर डाला ।
मैं पागल हो गया लेकिन न ओठों से लगा प्याला ॥

नेकराय—(तेज़-स्वर में) इतनी अधीरता ? इतना उन्माद ? और इस उम्र में ? संघ-शिरोमणि ! एक बार विचार कीजिए—कि आप क्या कह रहे हैं ?

धवल—(ओछेपन के साथ) क्या कह रहा हूँ ? वही कह रहा हूँ—जिसे कहने के लिए दिल मजबूर कर रहा है ! वही कर रहा हूँ—जिसे करने के लिए जी में ठान चुका हूँ । बुढ़ापे की उम्र, प्रतिष्ठा का लोभ, और जानका

ख़तरा कोई अब मेरे रास्ते में रुकावट नहीं डाल सकता।

या तो मेरी ज़िन्दगी हो, ख़ाक में मिल जायेगी।
या मुहब्बत की कशिश, अपना असर दिखलाएगी॥
या तो अरमानों को अब, मिलती है मुँह माँगी मुराद।
या ज़माने मे उठा जाता है मेरा एतक़ात॥
या तो नरकों की लपट ढा देगी अरमानों का घर।
या बहिश्तों के मज़े आयेंगे दुनिया में उतर॥

नेकराय—(क्षणभर चुप रह कर) साफ़-साफ़ कहिए, धवलरायजी! वह कौन-सी रूपमयी है? जिसने यह बर्बादी की आग सुलगाई है?

धवल—(विह्वलता के साथ) न छिपाऊँगा! न छिपाऊँगा—वणिक पति, तुम से यह राज़! तुम्हीं लोग मेरी इमदाद कर, मुझे मेरी ख़ुशी वापस दिला सकते हो! सुनो—जी लगाकर सुनो—श्रीपाल की स्त्री—हंस द्वीप की सुन्दरी -रयन मंजूषा कुमारी जो इस जहाज़ पर हंस द्वीप से सवार हुई है, वही मेरी इस मौजूदा बीमारी की वजह है। उसी ज़ालिम की ख़ूनी नज़र ने मेरे दिल को घायल किया है।

नेकराय—(ज़ोर से) चुप रहिए संघपति! पाप की चोटी पर खड़े होने की ख़्वाहिश न कीजिए! ताज्जुब है, कि वे शब्द मुँह से किस तरह निकल रहे हैं, जिनका ख़याल में आना भी गुनाह समझा जाता है, पाप समझा जाता है। धवलरायजी! मेरी सलाह मानिए—मेरी प्रार्थना की क़द्र कीजिए—और इस रास्ते से दूर हट जाइए। क्या आप भूल गए, कि श्रीपाल को

आपने अपना धर्म-पुत्र क़रार दिया है। वह आपको पिताजी कह कर पुकारता है।

धवल—(दुष्टता से) पुकारने दो ! मैं इस माने हुए— बनावटी—नाते-रिश्ते की क़तई परवाह नहीं करता।

नेकराय—(दृढ़ता के साथ) लेकिन दुनिया की नज़र में वह आपकी पुत्र-वधू है, बेटी पर पिता की कुदृष्टि नरक को चुनौती देना है। संघपति ! नादान होकर अपने हाथों अपनी क़ब्र न खोदिए।

हरगिज़ क़दम न दीजिए काँटों की राह में।
किसको मज़ा मिला है गुनाहों की छाँह में॥
अपनी नज़र में मौजूदा दुनिया को देखिए—
मत आँखें बन्द कीजिए सपनों की चाह में॥

धवल—(क्रुद्ध होकर) जुबान बन्द कीजिए—नेकराय ! मैं आपको इसलिए अपने साथ नहीं लाया, कि आप मेरी मर्ज़ी के खिलाफ़ मुँह खोलें। याद रखिए, इसका अंजाम आपके हक़ में अच्छा नहीं होगा।

नेकराय—(गंभीरता से) मुआफ़ कीजिए संघ-पति ! मैं अपने फ़र्ज़ से इसलिए हो नहीं हट सकता, कि आपको मेरी सलाह ना'पसन्द है। ध्यान रखिए, मैं इसीलिए—ब हैसियत वज़ीर के—साथ लिया' गया था, कि किसी संकट के वक़्त में मुनासिब मशविरा दे सकूँ।

धवल—(तमक कर) लेकिन मुझे आज तुम्हारे मशविरे की ज़रूरत नहीं। तुम उस हकीम की तरह हो, जो मर्ज़ को घटाने के बजाय बढ़ाने की दवा देकर भी अपने को बुद्धिमान—समझदार—कहने का दावा पेश करता है। समझ रक्खो, आख़िर मेरे हाथ में भी एक शक्ति है।

नेकराय—(उपेक्षा से) शक्ति ? मैं जानता हूँ आप इस समय यह न मानेंगे कि आपकी शक्ति अन्याय की शक्ति है, ज़ालिमाना-ताक़त है। लेकिन तब पर भी वह शक्ति कोठीभट श्रीपाल के मुक़ाबिले में मड़े-तिनके के बराबर भी नहीं है ! आपकी दशा मौत के पंजे में दबे हुए, उस रोगी की तरह है, जो शिफ़ा देने वाले हक़ीम को भी दुश्मन समझ लेने की भूल करता है। (मुलाइमियत से) मैं एक बार फिर सावधान करता हूँ—कि आग से न खेलिए संघपति ! यह पर-नारी प्रेम की आग आप की दौलत, इज्ज़त सभी जलाकर राख कर देगी।

पर-नारी है वह कालकूट, जो लेकर रहता प्राणों को।
पर-नारी है वह कुन्दछुरी, जर्जर करती जो हाड़ों को॥
पर-नारी है वह सुगम राह, जो नरकपुरी पहुँचाती है।
पर-नारी है वह आग, कि जो इज्ज़त-ईमान जलाती है॥

धवलराय—(कुछ गंभीरता से) लेकिन सवाल तो यह है कि मेरी ज़िन्दगी की साँसें, अब उसी के मिलने पर अटकी हुई हैं। उसका न मिलना ही मेरी मौत है। कहो, तुम मेरी मौत चाहते हो, या ज़िन्दगी ?

नेकराय—(ख़ुशी के साथ) ज़िन्दगी ! लेकिन वह ज़िन्दगी, जिसे दुनिया ज़िन्दगी के नाम से पुकारती है। वह ज़िन्दगी, जो अपनी अच्छाइयों के बल-भरोसे पर ज़िन्दगी कहलाने की हक़दार है।

नहीं वह ज़िन्दगी जिसको, जहाँ नफ़रत से ठुकराये।
नहीं वह ज़िन्दगी जो मौत के क़दमों में गिर जाए॥
वही है ज़िन्दगी जो नाम पाती है भलाई से।
ख़ुदी को छोड़कर जो पहुँच जाती है ख़ुदाई में॥

संघपति ! सलाह मानिए। नहीं, एक दिन आपको इसी नेक-सलाह के लिए तरसना पड़ेगा, पछताना पड़ेगा। पाप के रास्ते पर क़दम रखने के पहले, एकबार श्रीपाल की शक्ति की ओर देख लीजिए। और देख लीजिए, रावण-कीचक की बदनाम-कहानियों की ओर।

प्रतापी थे कि जिनका राज्य दुनिया-भर में चलता था।
बुरा लगता था सूरज भी, जो सरपर से निकलता था॥
हुई जब बद-नज़र तो होगया दुनिया में मुँह काला।
ख़लालन की कज़ाने उनकी हस्ती को मिटा डाला॥

धवलराय—(क्रोध से) चुप रहो—वणिक वर। मैं फिर कहे देता हूँ—अगर अपनी भलाई चाहते हो, तो दूर हट जाओ मेरे सामने से ! मुझे ऐसे सलाहकार की ज़रूरत नहीं, जो भविष्य की खोफ़नाक-तस्वीर खींचकर वर्तमान के स्वर्गीय-सुखों से दूर हटाने की ज़िद पकड़ जाय।

नेकराय—(दृढ़ता से) अपनी भलाई की ख़ातिर नहीं, आपको बुराई के रास्ते पर बढ़ने देने के लिए, मैं दूर हटा जाता हूँ—संघपति ! लेकिन याद रखिये—वह वक्त नज़दीक ही आ रहा है,जब आप-अपने काले-कारनामों के लिए, आँसू बहाते हुए, रहम की भीख माँगेंगे।

(जाता है)

धवल०—(स्व-गत, क्रोध से) अहंकारी ! जिसकी रोटियाँ खाता है, उसी को बुरा भला कहने में अपनी शान समझता है। नहीं जानता कि कौशाम्बी के धनकुबेर धवलराय भी कुछ ताक़त रखते हैं।

है मेरे पास वह ताक़त, जो अपने फन में आला है।
कि जिसको शानोशौक़त का जहाँ में बोलबाला है॥

मैं ला सकता, जमीपर स्वर्ग सारे उसकी ताक़त से।
भले ही कम कोई समझे, उसे अपनी हिमाक़त से॥

बदराय—(चापलूसी के ढँगपर) मुनासिब फ़रमा रहे हैं—लक्ष्मी पति! आज दुनिया में पैसे की ताक़त से बढ़कर कोई ताक़त नहीं है। यह वह ताक़त है, जिसके बलपर सारी ताक़तें ख़रीदी जा सकती है।

छुपा देता है पैसा आदमी के छल फरेबों को।
कि बुर्क़ा बनके ढक देता है उसके सारे ऐबों को॥
बड़ी ताक़त है पैसे में, सुना है इल्मदाँओं से।
पुजा देता है पैसा, जानवर को देवताओं से॥

धवल—(हर्षित होकर) ठीक! यही मेरा ख़याल है, पैसे की ताक़त से श्रीपाल की ताक़त को पराजित किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए कोई तरकीब चाहिए—वणिकवर! निकालो कोई तर्कीब और लो मुँह माँगा इनाम!

बदराय—(बलखाते हुए) क्यों, नहीं? मुझसे तर्कीब न निकाली जाय—हो सकता है यह?

मिले पैसा मुझे तो मैं, वे अचरज सामने लाऊँ।
समझदारी की पैनी अक़्ल पर जादू चला पाऊँ॥
अँधेरी रात में आकाश पर मैं सूर्य चमका दूँ।
लुटादूँ स्वर्ग घर घर में, या दम-भर में प्रलय ढा दूँ॥

धवलराय—(ख़ुशी को दबाते हुए) तो बोलो, कौन-सी वह तर्कीब है, जिससे मेरी संजीदगी का इलाज हो सके।

बदराय—(धवल० के कान में कुछ देर, कुछ कहता रहता है। धवल० का मुँह प्रसन्नता से चमक उठता है) कहिए, है न यह ला-जवाब नुस्ख़ा?

अवतार हूँ न राम हूँ न, मैं रहीम हूँ।
मुर्दों में जान डाल दूँ, मैं वह हक़ीम हूँ ॥

धवल—(ख़ुशी से उन्मत्त होकर) ख़ूब! ख़ूब तर्कीब सूझी—मेरे हक़ीम साहेब! यह लो अपनी कारगुज़ारी का इनाम. और शीघ्र जाकर करो इस अनोखी तरकीब को अमल में लाने का इन्तज़ाम! (अशर्फ़ियाँ देता है)

मैं ख़ुश हूँ तुमसे, तुमने मेरी जान बचा दी।
मुश्किल जो हो रही थी वह आसान बना दी ॥

बदराय—(अशर्फ़ियों की थैली लेकर) अभी लीजिए—संघपति! पैसे की ताक़त से श्रीपाल की ताक़त को समुद्र के अथाह जल में डुबोये देता हूँ। रास्ते का काँटा दूर होते ही, आप देखेंगे कि दिल को चुराने वाली आपके क़दमों में गिर रही है। वृक्ष से छूटी हुई बल्लरी की तरह असहाय होकर वह आपकी इच्छा के मुताबिक़ चलना मंजूर कर रही है। साँप कुचल दिया गया है, और मणि आपके हाथ में है।

धवल—(ख़ुशी से विह्वल होकर) बहुत ख़ूब, बदराय! बेशक तुमने क़ाबिले तारीफ़ तर्कीब निकाली है। जहाँ हंसद्वीप की सुन्दरी को मेरी प्यार की दुनिया में आने के लिए विवश होना पड़ेगा, वहाँ श्रीपाल की ख़ौफ़नाक ताक़त का डर भी मेरे दिल से निकल जाएगा। जाओ शीघ्रता करो। विलम्ब की एक एक घड़ी मुझे पहाड़ हो रही है।

बदराय—(अभिवादन पूर्वक) जो हुक्म!

(प्रस्थान)

—: पटाक्षेप :—

पन्द्रहवाँ दृश्य

(स्थान—जहाज़ की खुली छत, रात का वक्त । रयनमंजूषा कुमारी और महाराज श्रीपाल रेलिंग के सहारे खड़े बातें कर रहे हैं । मुख पर प्रसन्नता है)

श्रीपाल—(मुस्कराते हुए) पा लिया मेरा परिचय ? अब, जब अपने भाग्य को शादी के बन्धन से मेरे भाग्य के साथ बाँध चुकीं । (हँसते हुए) 'पानी पीकर जात पूछना' क्या इसे ही कहा जाता है—हंसद्वीप की सुन्दरी ?

रयनमंजूषा—(मुस्कान-पूर्ण) आपका कहना उपयुक्त नहीं है - चम्पापुर नरेश ! दुनिया में उन आँखों की भी कमी नहीं है, जो सिर्फ जात ही नहीं, बल्कि मन की बात तक को देख लेती हैं । और फिर रत्न की चमक को खाक के पटल कब छुपा सके हैं ? वह देखिए—(ऊपर की ओर उँगली उठाते हुए) झुण्ड के झुण्ड बादल सुधाकर की रश्मि-राशियों को ढक नहीं पा रहे । सही है कि मेरे पिताजी ने आपका परिचय नहीं पूछा, लेकिन उन्हें पूर्ण विश्वास था कि आप कहीं के कुलीन राजकुमार हैं ।

श्रीपाल—(मुग्ध-स्वर में) रयन मंजूषा कुमारी ! सचमुच तुमने मेरे जीवन में प्रवेश कर इस नीरस-यात्रा को रसमय बना दिया है ।

रयन—(आनंदित-स्वर में) और मुझे जो अपनी जीवन-यात्रा के लिए साथी मिला है, वह तुम्हारी प्रसन्नता से कहीं ज्यादह मूल्यवान है—प्राणेश्वर ।

आज बाजी ले रही है, यह गृहस्थी स्वर्ग में ।
धन्य निज को मानता हूँ, आपके संसर्ग में ॥

श्रीपाल— (प्रेम-पूर्ण-स्वर में) ।

हुआ मर सब्ज वह गुलशन, जो वर्षों तक रहा उजड़ा ।
कि खण्डहर मे उतर आया है, गोया चाँद का टुकड़ा ॥

रयन—(समुद्र की ओर इशारा करते हुए) कितनी भयानक रात है—प्राणनाथ ? काले बादलों ने निशानाथ को दबोच रखा है । आकाश से लेकर समुद्र के अथाह जल तक, सब कालिमा पूर्ण हो रहा है । जैसे किसी पापी की पाप चेष्टा बिखर पड़ी हो । वह देखिए—बन-बन कर बिगड़ने वाली लहरें, चिल्ला-चिल्ला कर कह रही हैं—

न फँस रे. मोह-माया मे, ये दुनिया आनी-जानी है ।
कि बैठी मौत के मुँह मे, यहाँ पर जिन्दगानी है ॥

श्रीपाल—(नैपथ्य की ओर कान लगाते हुए) ठहरो ! ठहरो प्राण-प्रिये ! मालूम होता है, आज फिर संघ के ऊपर कोई संकट आ रहा है ! सुनो—सुनो मल्लाहों की पुकार ! भयभीत वणिकों का चीत्कार !

(नैपथ्य से—'दौड़ो, दौड़ो—जहाज़ डूबे जा रहे हैं ।' 'लुटेरे आगए—लुटेरे, भागो, भागो ।' 'तूफ़ान है…तूफ़ान…।' जलचरों ने उपद्रव किया है—ये बड़े-बड़े मगर-मच्छ । जहाज़ डूबे, डूबे । किश्तियाँ छोड़ दो अरे, किश्तियाँ…। हे, भगवान् ! प्राण बचाओ, बचाओ ।' 'कुँवर श्रीपाल के पास चलो ।' चलो ! चलो ।'—आवाज़ें आती हैं ।)

ज़रूर कोई खौफ़नाक घटना हो रही है । सुन्दरी तुम यहाँ ठहरो, मैं देखता हूँ—क्या मुसीबत है ?

रयन—(घबरा कर) नहीं, यह नहीं होगा—मैं कहने जा रही थी कि मेरा चित्त चंचल हो उठा है, आँख अशुभ की सूचना दे रही है । कि सहसा……

श्रीपाल—(दृढ़ता से) घबराओ नहीं—मंजूषे ! दीनों की सहायता करने दो मुझे। यही क्षत्रिय-धर्म है। वह देखो—घबराये वणिक इधर ही चले आ रहे हैं।

(कोलाहल पूर्ण भीड़ का प्रवेश)

भीड़—बचाइए-बचाइए राजकुमार ! इस संकट से बचाइए।

श्रीपाल—(अभय-स्वर में) हुआ क्या है ?

भीड़—मालूम नहीं, तूफ़ान है, लुटेरे हैं, मगर-मच्छ हैं जानें क्या है ? जहाज़ डगमगा रहे हैं, डूबे जा रहे हैं। मल्लाह चिल्ला चिल्ला कर सावधान कर रहा है।...

श्रीपाल—चिन्ता मत करो। ठहरो मैं अभी मस्तूल पर चढ़कर पता लगाता हूँ कि क्या है ?

(जहाज़ का वह हिस्सा जो तब ज़रा आड़ में रहता है, अब सामने आ जाता है—ऊँचा मस्तूल है। चढ़ने के लिए मोटी बर्त लटक रही है एक सिरा ऊपर, एक जहाज़ में बँधा है श्रीपाल बर्त पर चढ़ते हैं, जब आधी दूर पहुँचते हैं। धवलसेठ बर्त काट देता है। श्रीपाल समुद्र में गिरते हैं। जहाज़ पर हाहाकार मचता है—'बर्त टूट गई। श्रीपाल सागर में गिर पड़े। हाय यह क्या हुआ ? अब कौन समुद्री-संकटों से रक्षा करेगा।')

रयन—(विलाप करती हुई) प्राणनाथ ! मेरी जीवन-यात्रा के साथी। कहाँ गए ? कहाँ गए ? (गिर कर मूर्छित हो जाती है।)

(कोलाहल)

ड्राप

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

[स्थान—जहाज का एक कमरा। रयनमंजूषा मलिनवेश, उदास-चित्त विलाप कर रही है]

रयन०—(रोते हुए) कहाँ गए?—कहाँ गए मेरी जीवन-नैय्या के केवट! मुझ अभागिनी को बीच मझधार में छोड़कर—कहाँ गए मेरे जीवनाधार? दुखों के दरिया में डूब रही हूँ—मुसीबतों की चट्टानों से टकरा रही हूँ—कहाँ हो, मेरे दुखित जीवन के सौभाग्य! मुझे बचाओ! तुम्हारे बिना कौन मेरी जीवन-यात्रा पूर्ण करायेगा? कौन मेरे हृदय के उपवन में बसन्त की आनन्दकारी हरियाली उगायेगा?……

धवल०—(प्रवेश करके बात काटते हुए) मैं! सुन्दरी मैं!! (हँसकर) इतने बड़े जहाजी काफ़िले को इस पार से उसपार तक पहुँचा सकने वाला, क्या एक सुन्दर युवती की जीवन नैया को नहीं खे सकता? अगर ऐसा ख़याल रखती हो, तो वह बहुत ग़लत है! विश्वास करो, धवलराय की जब तक तुम्हारे ऊपर कृपा है, श्रीपाल की मृत्यु तुम्हारे लिए कदापि दुखदायी नहीं है!

रयन०—(दुखित-चित्त से) कौन, धवलराय? दूर हट जाइए मेरे सामने से। तुम मनुष्य नहीं, हत्यारे हो! तुमने मेरे 'जीवन-सर्वस्व' का ख़ून किया है। तुम शरीफ़ नहीं, लुटेरे हो! मेरे सुहाग को लूटकर तुमने दरिया में डाला है। तुम्हारा मुँह देखना भी मेरे लिए पाप

है। कहती हूँ—मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो। और ज़्यादह न सताओ। नट की मिटी की तरह अरक्षित—एक अनाथ बालिका पर दया करो।

धवल०—(आशक्त-स्वर में) हंसद्वीप की सुन्दरी! समय आगया है, कि सब कुछ मुझे अब साफ़-साफ़ कह देना चाहिए। और वह यह है, कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। तुम्हारे बिना मेरा जीवन, मौत के दाँतों में उलझ रहा है।

रयन०—(क्रोध से काँपते हुए) चुप! चुप रहिए- संघपति! अपनी मर्यादा की ओर देखिए। अनाचार के हालाहल में अपनी वाणी ख़राब न कीजिए। नहीं, उसी अपमान का आपको भी सामना करना पड़ेगा, जिसे तुम्हारी दूतियाँ—कुटनियाँ—भोग चुकी हैं! मैं समझती थी—कुटनियों के तिरस्कार की बात तुम्हारी आँखें खोल देगी। पर, देखती हूँ—उस चेष्टा को बेकार जाते देख, तुम स्वयं उस अन्याय पर उतरना चाह रहे हो।

धवल०—(ज़रा क्रोध पूर्ण) कुटनियों का अपमान कर मालूम होता है तुम्हारा हौसला बढ़ गया है—मंजूषे! मेरे अपमान करने का इरादा छोड़ दो—समझ रक्खो—मैं पुरुष हूँ। वे नारियाँ थीं। मैं बहुत-कुछ ताक़त रखता हूँ।

रयन०—(व्यग्र-स्वर में) तब क्या, आपका पौरुष, नारी की दीनता से लाभ उठाना चाहता है? कौशाम्बी के धन-कुबेर! विवेक से काम लीजिए—मेरे सतीत्व के साथ खिलवाड़ न कीजिए। नहीं, आप नष्ट हो जाँयगे।

जो भी उतरे है नराधम, इस बदी के काम पर।
मिटगए कालिख लगाकर, अपने-अपने नाम पर॥

धवल०—(स्नेह के साथ) सुन्दरी ! रहने दो इस रूखे इतिहास को। तुम्हारे मुँह से यह अच्छा नहीं लगता। देखो, दुनियाँ में जवानी एक चीज़ होती है, और उससे भी बढ़कर होता है—रूप। तुम्हारे पास दोनों चीज़ें हैं। तुम्हें इनकी क़द्र करना चाहिए। इस तरह क्यों बरबाद कर रही हो—मंजूषे ! याद रक्खो—यह जिन्दगी में एकबार ही प्राप्त होती है।

अगर है 'रूप' मदिरा तो, 'जवानी' उसकी प्याली है।
मुहैया हैं जिसे दोनों वो बेशक भाग्यशाली है॥

रयन०—(दृढ़-स्वर में) शर्म ! शर्म कीजिए पिताजी ! बुढ़ापे की ओर देखिए।

बुढ़ापा अनुभवों का जिन्दगी का ज्ञान देता है।
बुढ़ापा वह है जिसको हर बशर सन्मान देता है॥
हज़ारों समय-असमय मौत के क़दमों में गिरते हैं—
कठिनता से बुढ़ापे का समय भगवान देता है।
है उसको थूकती दुनिया घृणा से मुँह फिराती है—
नहीं अपने बुढ़ापे पर जो बूढ़ा ध्यान देता है॥

धवल—(डपट कर) ख़ामोश ! नहीं जानती, तू किससे बातें कर रही है—नादान छोकरी ? जब तक मैं अपनी तौहीन को बर्दाश्त करता जा रहा हूँ—तू आगे बढ़ती जा रही है। मेरे ही टुकड़ों पर पलने वाले एक नाचीज़ ग़ुलाम की स्त्री ! तेरी यह हिम्मत ? मंजूषे ! कहे देता हूँ—मेरी ख़ुशी में ही तुझे अपनी ख़ुशी बाँधनी पड़ेगी। चाहे राज़ी से इसे स्वीकार करले, चाहे ज़ुल्म करने पर मुझे विवश कर !

बुझा कर ही रहूँगा, प्यास अपने मन-चले दिल की।
कि जिसने जिन्दगी में, मौत की तस्वीर शामिल की॥

रयनः—(अधीर-स्वर में) बहुत हो चुका—पिताजी ! अब इस अन्याय से हाथ खींच लीजिए। क्यों आप मेरे अनिष्ट पर इतने उतरे हुए है ? मुझे अभागिनी बना कर भी आपको सन्तोष नहीं हुआ, सतीत्व लूटने तक के लिए तैयार हो रहे हो ? सोचो तो जरा, मैं पुत्रवधू—तुम्हारी पुत्री की तरह हूँ—क्या पिता, पुत्री पर कुदृष्टि कर सकता है ?

अगर इस पाप के विष की हृदय में गन्ध पहुँचेगी।
तो रौरव नरक-सा इस आत्मा को कष्ट वह देगी॥
कि रावण और कीचक की कथाएँ यह बताती हैं—
ये इज्जत-आबरू, लेगी कि आखिर प्राण तक लेगी॥

धवल—(गंभीरता से) दुनिया में नजारों की कमी नहीं है—रानी ! छोड़ दो इन बातों को। जो फूलों को चुनता है, काँटों की नोंक से वह नहीं घबराता। (मुलायम-स्वर में) सुन्दरी ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ—मेरे प्यार का आदर करो। मैं तुम्हें हृदय के सिंहासन पर बिठलाऊँगा—यह सारी धन-दौलत तुम्हारे कदमों में डाल दूँगा। कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नहीं चलूँगा।

मैं अपने मन के मंदिर की तुम्हें देवी बनाऊँगा।
पुजारी बन के जीवन को मैं सेवा में लगाऊँगा॥

रयन—(दुःखित होकर, स्वगत) भाग्य ! बोलो, और अब क्या दिखाना चाहते हो ? सुहाग छीना, और अब धर्म भी लूटना चाहते हो ? नहीं, यह हर्गिज न होगा ! (धवल से) शर्म करो, बुढ़ापे का खयाल करो—धवलराय ! अनाथा की आहों में मुस्कराहट भरने की चेष्टा न करो।

धवल—(मुस्कराते से) प्राण प्यारी ! विलम्ब की घड़ियाँ, मौत की घड़ियाँ बन रही हैं। आओ; आओ—'काम की

आग' को 'मिलन' के ठण्डे-छींटों से बुझा दो। मुझ से तुम्हारी यह शोक की सूरत नहीं देखी जाती—न तुम्हें खाने का होश है, न पीने की चिन्ता! नहाना-धोना, बनाव शृंगार, सब-कुछ छोड़कर वियोगिनी बन बैठी हो, क्या यह एक रूप की रानी के लिए मुनासिब है?

न जिस पर जंग की स्याही, जो बिजली-सा चमकता है।
वही खंजर किसी दिलगीर का दिल चीर सकता है॥

रयन—(क्रोध से) बन्द कर बकवास! ओ, दुराचारी बुड्ढे! हृदय की आँखों को न फोड़—

रुकता न कण्ठ पाप की मरुभूमि पर चलते!
जलती न क्यों जुबान तेरी आग उगलते?

धवल—(प्रेम-पूर्ण) अहह: यह तिरछी चितवन? सुना करता था कि नारी का हृदय मोम का होता है। लेकिन देख रहा हूँ—कि तुम पत्थर हो।

पत्थर भी जगह देता है रस्सी को हृदय में।
रस्सी की रगड़, क्षय को बदलती है विजय में।'

(पैरों में गिर कर) मंजूषे! प्यारी मंजूषे—

न तरसाओ हृदय को अब, हृदय से हृदय मिलने दो।
निकल काँटा गया दुख का, तो सुख के फूल खिलने दो॥

रयन—(क्रोध से, पीछे हटते हुए) ओ, नराधम! सतीत्व के पाक दामन को छूने का साहस न कर।

नरक का कीट छूना चाहता है स्वर्ग की सीमा।
अमावस चाहती है, चाँद के सौन्दर्य का बीमा॥

धवल—(रुष्ट होकर ज़ोर से) खबरदार! बहुत आगे न बढ़। जानती नहीं, मैं सब कुछ कर सकता हूँ।

रयन—(गंभीरता के साथ, दृढ़ स्वर में) सब कुछ कर सकते हो,

लेकिन पतिव्रता का सतीत्व-भंग नहीं कर सकते। उसके पावन शरीर को नहीं छू सकते।

मणिधर की मणि को ले सकना,
दुनिया में उतना नहीं कड़ा।
जितना पतिव्रता नारी के—
पतिव्रत का है सामना कड़ा॥

धवल—(दबंगपन के साथ) समझ गया। सीधी तरह राह पर न आएगी।

मैं जितना झुकता जाता हूँ, तू उतना आगे बढ़ती है।
शायद वह मदिरा पीई है, जो बिना पिए ही चढ़ती है॥

मंजूषे! एक बार फिर सोच ले, तू मेरी मुट्ठी से निकल कर नहीं जा सकती, तेरी भलाई, मेरा हुक्म मानना है।

रयन—(स्वगत) भगवान···दीन बन्धु···! मुझे इस लुटेरे से बचाओ। मेरी लाज रखो। रक्षा करो प्रभु! (दीन-स्वर में, धवलराय से) असहाय नारी पर तरस लाओ, मैं भीख माँगती हूँ—सतीत्व को छोड़ दो। अगर एक हत्या से पाशविकता का पेट नहीं भरा है, तो मेरे प्राण भी ले लो पिताजी।

धवल—जानती है—अगर मेरे क्रोध की आग भड़क उठी तो क्या होगा?

रयन—वही होगा, वही होगा जो क़िस्मत में लिखा होगा।

धवल—आख़िर इस नादानी का अंजाम?

रयन—(तीखे-स्वर में) तुझे इस वहम से क्या काम?

है जिसके दिल में मानवता, गुनाहों से जो डरता है।
कि नारी-धर्म की बातों को वह ही समझ सकता है॥

धवल—(क्रोध-पूर्ण)

मैं छोड़ूँगा न तेरे रूप को, अपराध के डर से।
कुचल दूँगा मैं नारी-धर्म को, पैरों की ठोकर से।।

रयन—(अचरज से) इतना अहंकार ?—

न खुल पायेंगी ये आँखें, रहम को गिड़गिड़ायेगा।
कि नारी-धर्म का जब तेज तेरे आगे आयेगा।।
किसे कहते हैं पातिव्रत, इसे तब खूब समझेगा।
ये सारा गर्व, पानी बन के जब आँखों से निकलेगा।।

धवल—(गंभीर-स्वर में) सुन्दरी! शीलव्रत के गीत गाकर, दिल को तसल्ली दे रही हो, मगर यह बालू की दीवार टिक नहीं सकेगी। तेरे सौन्दर्य का स्वाद बगैर चखे मैं नहीं रहूँगा।

मेरी ताक़त करेगी सामना, जब जुल्म ढायेगी।
बता फिर किस तरह तू अपनी अस्मत को बचायेगी।।
है किस में इतनी ताक़त, सामने आने की जो हिम्मत दिखायेगा?

रयन—(बीच में ही)।

ये मेरा धर्म ही वह है जो दुख में काम आयेगा।।
अनेकों नारियों की इसने ही रोकी तबाही है।
तवारीखों के पन्ने दे रहे इसकी गवाही है।।

धवल—(प्यार से)।

समझदारी नहीं है ऐश की घड़ियों को ठुकराना।

रयन—(दृढ़ता से)।

है नारी-धर्म, पति के नाम पर बलिदान हो जाना।।

धवल—(सिर नवाकर)।

पुजारी रूप का हूँ, प्यार तेरे का भिखारी हूँ।

रयन—(गंभीरता से)।

प्रलोभन में न आऊँगी कि मैं भारत की नारी हूँ।।

धवल—(शान्ति से) मंजूषे! मेरी ख्वाहिस को मान लो।

रयन—(गंभीर-स्वर में) पिताजी ! विवेक पर ध्यान दो ॥
धवल—(दृढ़ता से) ।
मैं कहता हूँ मजहब के ये झूँठे झगड़े, न तेरी अस्मत बचा सकेंगे!
रयन—(गंभीरता से) ।

भलाई के पथ पर बुराई के काँटे—
है विश्वास दिल को न हर्गिज उगेंगे ॥

धवल—(तामसी-स्वर में)

मंजूषे ! छोड़ दे जिद को, नहीं तो दुख उठायेगी ।

रयन—(संजीदगी से)

सभी सहना पड़ेगा वह, जिसे किस्मत दिखायेगी ॥

धवल—(झुँझला कर) देख, हठ छोड़ !
रयन—(सरलता-पूर्वक) अन्याय से मुँह मोड़ !

सता कर मुझ अभागिन को, न तू भी चैन पाएगा ।
नतीजा जब मिलेगा पाप का, तब थर थरायेगा ॥
सती के तेज में जलकर, सितमगर ख़ाक बनते हैं ।
जो अपने दिल में अपने को बड़े चालाक बनते हैं ॥

धवल -(क्रोध से बलात्कार आलिंगन के लिए आगे बढ़ता है) अब बर्दाश्त नहीं । देखता हूँ—सती का तेज कहाँ तक मेरे रास्ते में रुकावट डाल सकता है ?
रयन—(भीत-स्वर में—स्वगत-आकाश की ओर) प्रभो ! प्रभो !! मेरी लाज बचाओ ।

बचाया था सती-सीता को तुमने मह के फेरों से ।
बचाई द्रोपदी की लाज थी तुमने लुटेरों से ॥
दयामय हो, इसी से संकटों में काम आते हो ।
हमेशा दीन-दुखियों की, तुम्हीं बिगड़ी बनाते हो ॥
सुनो, मेरी भी करुणा कर, कि मैं असहाय रोती हूँ ।
बचाओ धर्म, वरना धर्म पर बलिदान होती हूँ ॥

गायन

मिटा दो अब तो ये कष्ट सारे, कृपा करो हे ! कृपालु भगवन् ।
तुम्हीं हो रक्षक हितू हमारे, कृपा करो हे ! कृपालु भगवन् ॥
उबारा अज-गज औ नाग-दादुर, बताया अंजन का वास सुरपुर-
पतित अधम नर भी तुमने तारे, कृपा करो हे ! कृपालु भगवन् ॥
बढ़ाया द्रौपदि का चीर भारी, तुम्हीं हो मीरा के ताप-हारी ।
अनाथ दुखियों के तुम सहारे, कृपा करो हे ! कृपालु भगवन् ॥
न हममें साधन न हममें बल है, तुम्हारी भक्ती में मन अचल है ।
हटादो कर्मों के आप आरे, कृपा करो हे ! कृपालु भगवन् ॥
मिटाओ दुख, करके ज्ञान वृष्टि, बनाओ "भगवन्" में प्रेम दृष्टि ।
हे नाथ ! सेवक हैं हम तुम्हारे, कृपा करो हे ! कृपालु भगवन् ॥

(पटाखे की आवाज़ के साथ एक दम अन्धेरा छा जाता है, तूफ़ान उठ खड़ा होता है—ज़ोर की आँधी चलती है. जहाज़ डगमगाने लगते हैं। समुद्र की गंभीर आवाज़, यात्रियों का हाहाकार सुन पड़ता है। 'बचाओ !' 'जान बचाओ !' की आवाजें नेपथ्य मे समीप आती मालूम देती हैं। धवलराय का बढ़ता हुआ क़दम रुका रह जाता है। रयन मंजूषा के मुँह पर एक दिव्य-तेज चमकता है, ख़ुशी में आँखें खिल उठती हैं।)

रयन—(हर्षित-स्वर में) धन्य हो प्रभु !

धवल—(भय से काँपता हुआ—समुद्री तूफ़ान, काले-काले बादलों से ढके आसमान की ओर देखते हुए)

यह क्या हुआ भगवान ? तूफ़ान—तूफ़ान ! जहाज़ डूबे जा रहे हैं—ओफ़ ! ... अरे मुझे क्या हो गया—पैर आगे नहीं बढ़ता, शरीर में आग—शरीर में आग भर रही है। मैं मरा—मैं मरा ! बचाओ कोई मुझे ... !

वणिक-दल—(प्रवेश कर, भयभीत स्वर में) बचाइए—बचाइए संघपति! जहाज डूबे जा रहे हैं, बड़े ज़ोर का तूफ़ान आया है। आह! बीच मझधार में जान गई—(सब एक टक धवलराय की ओर देखते हुए अच-रज से) अरे, आपको यह क्या हुआ? भूत, भूत-देव माया-इन्द्रजाल! इन्द्रजाल!!

(धवलराय के मुँह से आग निकलती है। ज़ोर से खाँसते हैं, पीड़ा से कराहते हैं।)

धवल—(भय से रोते हुए) मैं मरा, मैं मरा! कौन मार रहा है-मुझे? ये-लाठी, ये घूँसे, ये थप्पड़? आह-मैं बे मौत मरा। बचाओ कोई मुझे।

(अन्धकार हो रहा है, लाठी थप्पड़ घूँसे धवलराय के शरीर पर लगते दीखते हैं, पर मारने वाला नहीं दीखता। पगड़ी गिर जाती है, बाल बिखर जाते हैं; कपड़े अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। चोट के कारण गिर जाते हैं, फिर उठ खड़े होते हैं—मुँह से ख़ून, शरीर से, सिर से ख़ून बहने लगता है। रयन मंजूषा आश्चर्यचकित देखती रहती है। नोट—यहाँ कभी धवलराय, कभी मंजूषा के ऊपर लाइट फेंकनी चाहिए।)

वणिक—(आपस में) समझे! समझे!

यह है पति-भक्त नारी के, पतिव्रत धर्म की ताक़त।
कि बदकारी के एवज़ में, उठानी पड़ रही आफ़त॥

(मंजूषा से) देवी! हम दोनों पर रहम लाओ। इन्हें छोड़ दो।

नेकराय—(दुखित-स्वर से)

कहा था—दूर रक्खो अपने दिल को सर्द-आहों से।
न देखो तुम पर-स्त्री को कभी गन्दी निगाहों से॥

धवल—(आर्त-स्वर में) बचाओ, बचाओ—मैं मरा! ……(बीच

कर रयन मंजूषा के पैरों में गिरता है) पुत्री ! पुत्री ! मुझे क्षमा करो। मेरा क़ुसूर माफ़ करो।

मैं वह पापी हूँ, जिसने पुण्य की देखी न परछाईं।
मैं वह अन्धा हूँ, जिसने आँख रहते ठोकरें खाईं ॥

रयन—(हर्षित-स्वर में) उठिए—पिताजी !

ये बेशक शुभ शकुन है, भाग्य के हित में भलाई है।
बुरे-अच्छे समझने की, समझ जो लौट आई है ॥

(स्वगत, आकाश की ओर हाथ जोड़ते हुए) धन्य हो प्रभु ! सच्चे भक्त-वत्सल हो। किन शब्दों में तुम्हारा गुणानुवाद गाऊँ ? हे राग-द्वेष-शून्य ! काम-विकार को जीतने वाले ईश्वर ! तेरी भक्ति के प्रसाद से जिस किसी ने मेरी सहायता की हो, वह इन दोनों को दया कर छोड़दे।

[पटाखे की आवाज़ के साथ अन्धकार दूर होता है, तूफ़ान उतर जाता है।]

धवल—और वणिक दल—(हर्ष से) सती धर्म की जय हो ! महासती रयन मंजूषा कुमारी की जय हो।

[पटाखे की आवाज़ के साथ-साथ जमीन से देवियाँ प्रगट होती हैं—चक्रेस्वरी, पद्मावती, अम्बा, पद्मावती और मालिनी। दिव्य-तेज से मुख चमक रहा है, वस्त्रालंकार जगमगा रहे हैं। हाथों से पुष्प-वर्षा मंजूषा की ओर फैंकते हुए।]

देवियाँ—चिन्ता न करो—पुत्री ! शीघ्र ही तुम्हारा पति से मिलाप होगा। दुनिया में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो सती के अखण्ड-शील का भंग कर सके। जो अपने को धर्म के सहारे पर छोड़ देता है, वह कभी दीन नहीं होता, देव-देवियाँ उसको सहायता को तैयार रहते हैं।

अहिंसा है जहाँ पर, न्याय है, सद्धर्म है, नय है।
पराजय पाप पाता है, हमेशा धर्म की जय है॥

(सब अचल खड़े सुनते रहते हैं, सहसा पटाखों की आवाज के साथ देवियाँ अदृश्य होती है।)

धवल और वणिक वर—(ज़ोर से) महासती रयन मंजूषा कुमारी की, जय हो।

(पर्दा गिरता है।)

दूसरा दृश्य

[स्थान—कुंकुम-द्वीप का समुद्र-तट ! महाराज श्रीपाल तैरते हुए आते दिखाई दे रहे हैं। फिर भीगे कपड़ों सहित बाहर आकर खड़े होते हैं। थकावट के कारण मुँह उदास है।]

श्रीपाल—(आकाश की ओर हाथ जोड़ते हुए) धन्य हो, विघ्न-विनाशक आनन्द दायक भगवान, धन्य हो तुम !

तुम्हारी ज्ञान-गाथा से, हृदय अचरज में आते हैं।
न गणपति से गुणी-जन भी तुम्हारा भेद पाते हैं॥
तुम्हारी ही कृपा है यह जो लौटा मौत के घर से।
कि मुश्किल था निकलना जिन्दगी लेकर समुन्दर से॥

लेकिन भगवान ! नहीं, तुम धन्यवाद के पात्र नहीं हो। तुम्हारे नाम से तो लोग भव-सागर पार होते हैं। मुझे अगर इस छोटे से समुद्र का किनारा मिल गया, तो कोई बड़ी बात नहीं है।

जो दे सकता भिखारी को समूचे स्वर्ग की दौलत।
न मिलती है अधूरा-दान देने से उसे इज्जत॥

(आगे बढ़कर) अहा ! यह कैसी रमणीक-भूमि है ? शीतल; सघन छाया है। ठन्डी हवा चल रही है। चारों

ओर हरियाली फैली हुई है- जैसे नन्दन-वन ही आ गया हो। और सचमुच, मेरा थका-माँदा शरीर भी ऐसे ही स्थान की इच्छा कर रहा है। कुछ देर आराम करना चाहिए। (कपड़े निचोड़ कर लेट रहते हैं।)

श्रीपाल—(कुछ देर बाद चौंककर उठ बैठते हैं) हैं ?—यह क्या देखा ?—एक सपना ! भयानक सपना !!—मंजूषे ! मंजूषे !! धैर्य से काम लेना। अगर तुम्हारे भीतर सतीत्व की शक्ति होगी, तो तुम्हारी पवित्रता को नष्ट करने वाला कोई नहीं है।

जो अपने आत्म-बल का हर तरह सम्मान करते है।
सदा भगवान ऐसे भक्त का कल्याण करते हैं॥

(फिर लेट जाते हैं)

(एक ओर से कुंकुम-द्वीप के राजा भूमंडल, अपने दो सेवकों के साथ बातचीत करते हुए प्रवेश करते हैं।)

सेवक नं० १—(दृढ़ता के साथ) जी, हाँ ! मैंने अपनी आँखों से देखा, कि वह महा पुरुष अथाह सागर के जल से स-कुशल किनारे से आ लगा।

भूमंडल—(प्रसन्नता से) अच्छा ? लेकिन गए कहाँ वह ?

सेवक नं० २—यहीं, इसी वन में वे अपनी थकावट मिटाने के लिए लेटे थे—महाराज !

सेवक नं० १—(खुशी से उँगली का इशारा करतेहुए) वह देखिए—वह अब भी विश्राम कर रहे हैं।—वह रहे, वह।

(महाराज, श्रीपाल के समीप पहुँचकर घुटनों के बल बैठ जाते हैं। मुँह प्रसन्नता से चमक रहा है।)

भूमंडल—(क्षण-भर चुप रह कर, मुस्काते हुए) मेरे भाग्य को जगाकर, अब क्यों सो रहे हो—राजकुमार ? उठो न ?

(श्रीपाल की निद्रा-भंग होती है। अचरज के साथ देखते हुए—उठकर बैठते हैं।)

श्रीपाल—आप ?

भूमंडल—(हर्षित-स्वर में) हाँ, मैं भूमण्डल ! इस कुंकुम-द्वीप का नरेश हूँ, निश्चय ही आप मुझे नहीं जानते होंगे। लेकिन आप मेरे लिए अपरिचित नहीं हैं। मैं जानता हूँ—कि आप एक महा पुरुष हैं। आपके दर्शनों के लिए वर्षों से आँखें प्रतीक्षा कर रही थीं—राज पुत्र !

श्रीपाल—(स्वगत) भाग्य ! यहाँ क्या खेल खिलाना चाहते हो—मुझे ? बोलो तो ? (प्रगट) मेरे दर्शनों के लिए ? मालूम होता है, मेरे समझने में आपने कुछ गलती की है। कुंकुम-पुर नरेश !—मैं एक राहगीर हूँ इस से अधिक मेरा और कोई परिचय नहीं है।

भूमंडल—(सनम्र स्वर में) परिचय नहीं, सिर्फ इतना जानना चाहता हूँ—राजकुमार ! कि क्या आप वह व्यक्ति नहीं हैं, जो अपनी बाजुओं की ताक़त से समुद्र तैर कर यहाँ पधारे हैं।

श्रीपाल—बेशक ! मैं वही हूँ। रातों दिन अथाह सागर के जल से जूझता-जूझता आपकी राजधानी में आ गया हूँ। नहीं जानता—श्रीमान को मुझ से क्या कार्य है ?

भूमंडल—(प्रसन्नता से) कार्य ? यह कार्य है कि आपको मेरी दुलारी कन्या गुण माला का पाणिग्रहण करना होगा, उसे चरणों में स्थान देना पड़ेगा।

श्रीपाल—ताज्जुब ? अनायास यह जीवन-भर का सौदा ?

भूमंडल—अनायास नहीं, बहुत छान-बीन के बाद ! भाग्य-निर्णय के सहारे पर। राजकुमार ! कुछ दिन हुए, मैंने अवधि ज्ञानधारी योगिराज से कन्या के बारे में

पूछा था कि इसका 'वर' कौन होगा ? तो उन ने कहा था—जो व्यक्ति समुद्र तर कर यहाँ आयेगा, वही इसका वरण करेगा। उसी महा-पुरुष के साथ इसका वैवाहिक-नियोग है। उसी दिन से मैंने समुद्र-तट पर प्रहरियों को बिठा दिया ताकि उस महा-पुरुष के शुभागमन की तत्काल सूचना मिल जाय।

मिली यह आज ख़ुश ख़बरी, बड़ी मुश्किल से कानों को।
ख़ुशी के रंग में जो रंग रही है मेरे प्राणों को॥

श्रीपाल—(विनय के साथ) लेकिन मेरा कहना है—एक बार सोचिए ना ? कन्या की शादी ऐसी चीज़ नहीं है, कि बातें करते ही निर्णय पर पहुँच जाय। बहुत-कुछ देखना-जानना पड़ता है उसके लिए।

नहीं मुहताज जो तरमीम का, यह वह मसौदा है।
नहीं खिलवाड़ बच्चों का, ये जीवन-भर का सौदा है॥

भूमंडल—(प्यार के साथ) सच कह रहे हो, राज पुत्र ! लेकिन यह मत विचारो कि बग़ैर गंभीर अध्ययन के मैं तुम्हें जमाता बना रहा हूँ। नहीं, मुझ से भी बड़ी एक दूसरी ताक़त ने इसे तय कर दिया है।

मुमकिन है शेर, स्याल की सूरत से डर सके।
मुमकिन है नाव, दरिया को पत्थर की तर सके॥
मुमकिन नहीं कि ख़ूरेज़ी मज़हब का अंग हो।
मुमकिन नहीं कि साधु के बचनों का भंग हो॥

श्रीपाल—(स्व-गत)

उधर तो रयन मंजूषा का दुख दिल में घुमड़ता है।
इधर इस राज-कन्या का हृदय में प्रेम बढ़ता है॥
उधर नरकों की लपटें हैं, इधर है स्वर्ग की छाया—
जो बढ़ता स्वर्ग-पथ पर तो नरक दामन पकड़ता है॥

भू-मण्डल—(विनम्र शब्दों में) क्या सोच रहे हैं कुँवर साहेब ? चलिए—नियोगिनी का वरण कर मेरे भार को हलका कीजिए। विलम्ब की घड़ियाँ अब अच्छी नहीं लगती। ओठों से लगा प्याला दिल की आग बुझाने के बदले सब्र को छीन कर प्यास को ही भड़काता है। (नैपथ्य में वाद्य ध्वनि) उठिए-उठिए राजकुमार ! आपके स्वागत के लिए कुंकुम-पुर नगर की सारी जनता दौड़ी आ रही है। वह देखिए—

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में) चलिए।

(दोनों का, दोनों सेवकों के साथ प्रस्थान)

(पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

(स्थान—कुंकुमपुर नगर के राजमहल का उपवन ! महाराज श्रीपाल और गुणमाला बेंन्च पर बैठे बातें कर रहे हैं। दोनों प्रसन्न चित्त)

श्रीपाल—नहीं, यह मेरा सौभाग्य है कि (गुणमाला की ठोढ़ी छूते हुए) यह गुणों की माला आज मेरे गले की माला होकर, मुझे आनन्द में डुबो रही है। मौत के मुँह से निकल कर आने वाला मुसाफिर, आज एक अपरिचित राज्य का मिहमान बन बैठा है। क्या यह कम ख़ुशी की बात है—सुन्दरी ?

गुणमाला—(लजाते हुए) बेशक ख़ुशी की बात है। लेकिन तुम्हारे लिए उतनी नहीं, जितनी मैं इसे अपने लिए समझती हूँ। हीरे का अलंकार किसी सुन्दरी के हाथों में पहुँच कर भी ख़ुश नहीं होता, लेकिन

सुन्दरी उस अलंकार को पाकर फूली नहीं समाती—
प्राणेश्वर !

श्रीपाल—इसलिए कि हीरा पत्थर होता है। अगर वह हृदय रखता, तो ख़ुशी में नाच उठता।

गुण०—(दुलार के साथ) हीरा ख़ुश नहीं होता मेरे जीवन-संगी ! इसलिए नहीं, कि वह हृदय-हीन होता है। बल्कि इस लिए कि दुनिया में उसे इज़्ज़त की कमी नहीं। वह जहाँ जाता है, आदर-सत्कार ही पाता है। उसके हृदय में गुंजायश नहीं, कि वह ख़ुशी की साँस भी ले सके।

हृदय जो है नहीं तो वह, हृदय कैसे चुराता है ?
नज़र के साथ ही क्यों कर, हृदय में बैठ जाता है ?

श्रीपाल—(प्रेम से)

वही करता है चोरी, हीन जो अपने को पाता है।
हृदय रखता नहीं इससे पराया दिल चुराता है॥

गुण०—(सविनय) प्राणनाथ ! फूलों के भी हृदय नहीं बनाते, लेकिन वे हृदय के देवता पर चढ़ाये जाते हैं, वह उनसे प्रसन्न होता है। तो क्या हृदय-हीनों की संगति से देवता प्रसन्न होते हैं ?

हृदय से दूसरे के जो हृदय को बाँध सकता है।
वह कोई क्यों न हो, सीने में अपने हृदय रखता है॥

श्रीपाल—(मुग्ध-स्वर में) बहुत हुआ अब रहने दो—प्रिये ! मैं पराजय माने लेता हूँ—ख़ुश ? (हँसकर)।

बेशक यह वह मधु-लोलुप है जो आँखों से मधु पीता है।
विजयी होती आई नारी, नारी से नर कब जीता है ?

गुण०—(शर्मा कर) न शर्माओ—प्राणनाथ !

नारी तो नर की छाया है, उसके हित की अभिलाषा है।
नारी सीधे-से शब्दों में नर के चरणों की दासी है॥

वह सभी सौंप कर तन-मन-धन, दे देती कुल अधिकार उसे।
बस यही चाहती रहे सदा, मिलता स्वामी का प्यार उसे॥

श्रीपाल—(दुलार से) सुन्दरी ! सचमुच गुण माला हो तुम। तुम्हारे जैसी चतुर, रूप-रानी पाकर कौन भाग्यवान् अपने भाग्य को न सराहेगा ?

किया अहसान मुझ पर, मानता हूँ यह समुन्दर ने।
कि ला पटका वहाँ पर, थे जहाँ पर रूप के झरने॥

गुण०—(संकोच के साथ) हाँ, याद आया। एक बात पूछना चाहती हूँ, अगर आप नाराज न हों।

श्रीपाल—(उत्सुकता से) तुम से नाराज ?—कहो, क्या जानना चाहती हो ?

गुण०—(संकोच से) आप का परिचय !

श्रीपाल—(हँसते हुए) मेरा परिचय ? अब जानना चाहती हो जब न खुल सकने वाली गाँठ लग चुकी है।

गुण०—(दृढ़ता से) हाँ ! रत्न की दीप्ति ने बहुत-कुछ परिचय दे दिया है। लेकिन फिर भी चाहती हूँ—किस स्थान से, किस खान में वह सामने आया है, मालूम हो जाय तो अच्छा।

श्रीपाल—(गंभीरता से) तुम्हारी मर्जी ! सुनो—मेरा पिता है अथाह-सागर का जल। माँ है दरिया की कीचड़। बड़वानल मेरा भाई है, और उत्ताल लहरें हैं मेरा परिवार।

गुण०—(मुस्करा कर) खूब।

श्रीपाल—(गंभीरता से) सच मानो—सुन्दरी ! इन्हीं लोगों ने मुझे नया जीवन दिया है।

गुण०—(उदास होकर) गलत नहीं ! मगर मेरे जानने की बात इससे नहीं जानी जानी प्राणनाथ !

श्रीपाल—(गंभीरता से) पर, तुम जो जानना चाहती हो सुन्दरी ! उसे मैं प्रमाणित नहीं कर सकता। विश्वास करने के लिए कहने की इच्छा भी नहीं है। इसलिए इतना ही जान लो—कि एक अपरिचित-यात्री को मैंने अपना हृदय दिया है। उसे अपनी दुनिया का राजा बनाया है।

गुण०—(हठ-पूर्वक) मैं विश्वास करूँगी प्राणप्रिय ! मुझे अपना ठीक-ठीक परिचय दे दो। मेरे जीवन सर्वस्व ! सोना यह नहीं कहता कि मैं कीमती हूँ, पर, समझदार आँखों से उसे आदर ही मिलता है।

श्रीपाल—(मुस्करा कर) हठ पर आगई ? स्त्री-हठ को टालने की शक्ति मुझ में नहीं है। चलो, किसी दूसरे वक्त परिचय ले लेना।

गुण०—जो आज्ञा ! (दोनों का प्रस्थान)

(पर्दा गिरता है)

चौथा दृश्य

(स्थान—कुंकुम द्वीप के किनारे पर धवलराय का जहाजी काफिला। जहाज की छत पर धवलराय, नेकराय, बदराय, तथा अन्य वणिक बैठे हैं। धवलराय के मुँह पर व्यग्रता है—बेचैनी से टहल रहे हैं।]

धवल—(घबराहट के स्वर में) मुसीबत ! मुसीबत !! घोर संकट !!! निस्तार का कोई उपाय नहीं। चारों ओर मौत ! हर रास्ते से मौत झाँक रही है। ओफ़ ! जो खयाल में भी नहीं था, वह आँखों के सामने है।

नेकराय—(हैरत से) क्या हुआ है ऐसा ? क्यों घबरा रहे हैं—
प्रगट कर दीजिए वह राज़, जो दिल को दुखाता है।
न मिलता चैन, काँटा नहीं जब तब निकल जाता है॥

धवल—(डरे हुए ढंग से) काँटा ?—

नुकीली नौंक का काँटा, जो चुभ कर जान तक ले ले।
वो ज़हरी-साँप जो डसले तो फिर हरगिज़ न सिर खेले॥

नेकराय ! मुझे उसी काँटे, उसी ज़हरीले-नाग का डर है, जिसे एक बार कुचल कर दरिया में डाल दिया था। क्या तुम जानते हो, कौन है वह ?

नेकराय—(ताज्जुब से) नहीं समझा—संघपति !

धवल—(दृढ़ता से) श्रीपाल ! वही श्रीपाल जिसे मरा हुआ समझ कर, हम इस ओर से बे-खौफ़ थे।

वणिक—(अचरज से सब एक साथ) हँय, क्या श्रीपाल जीवित हैं ?

धवल—(दृढ़ता-पूर्वक) हाँ ! अभी उसे जीता-जागता देखकर लौटा हूँ। कुंकुम द्वीप का पड़ाव मालूम होता है—हम लोगों के लिए भला साबित नहीं होगा।

नेकराय—(उत्सुकता-पूर्वक) ताज्जुब है कि अथाह सागर की शक्ति भी श्रीपाल को मौत का स्वाद न चखा सकी।....संघपति ! किस हाल में, कहाँ आपने उन्हें देखा ?

धवल—(स्थिर-भाव से) मैंने देखा—खुली आँखों देखा—कि कुंकुमपुर नरेश महाराज भूमंडल के दर्बार में उच्च-आसन पर बैठा हुआ वह सत्कार पा रहा है।

सब लोग—(अचरज से) इतना सन्मान ?

धवल—(दृढ़ता से) इतना ही नहीं, वह राज्य का जामाता भी बन गया है ! राजकुमारी गुणमाला की शादी हो चुकी है—उसके साथ ! जैसे ही मैंने महाराज के आगे भेंट रखी, कि मेरी नज़र उस पर जा पड़ी, और मैं घबरा उठा।

नेकराय—क्या वह भी आप से कुछ बोले ?

धवल—नहीं ! इतना ही अच्छा रहा कि उस कम्बख्त ने मुँह नहीं खोला। महाराज ने परिचय पूछा, आने का कारण पूछा। लेकिन मैं किसी बात का ठीक-ठीक जवाब न दे सका, तबियत खराब हो जाने का बहाना कर लौटने लगा, तो महाराज ने कहा—'कुँवर श्रीपाल वणिक महोदय को पान दीजिए।' और वह उसी वक्त सत्कार-सामिग्री लेकर सामने आ गया।

हो गया जब सामने आकर के वह दुश्मन खड़ा।
बदहवासी बढ़ गई और मैं ज़मी पर गिर पड़ा॥
खुद सहारा देके उसने, फिर मुझे बैठा दिया—
मैं हुआ उस वक्त अपने, दिल में शर्मिन्दा बड़ा॥

नेकराय—(तसल्ली के स्वर में) घबराइए नहीं संघपति ! महाराज श्रीपाल का हृदय इतना छोटा नहीं है, जो आप से बदला लेने के लिए आगे आए। आप डर रहे हैं, कि आपने उनके साथ अन्याय किया है, विश्वासघात किया है और वह किया है, जिसे इन्सान कहाने वाले को नहीं करना चाहिए था। मगर मैं कहता हूँ—आप महाराज श्रीपाल की ओर से फिक्र छोड़ दीजिए। अवश्य ही अवसर आने पर वह बुराई का बदला भलाई से चुकाएँगे।

मुआफी माँग लो तुम, सिर झुका अपने कुसूरों की।
नजर से देख लो दरिया-दिली भारत के शूरों की॥

धवल—(तमक कर) नहीं ! नहीं, यह नहीं हो सकता। ग़लत सोचते हो नेकराय।—

छोटी-सी चींटी को देखो, गुस्सा उसको भी आती है।
बदला लेने की ख्वाहिश में, मरते; मरते मर जाती है॥

जो रखता अपने में ताक़त, बदला वह कैसे छोड़ेगा?—
ना मुमकिन-सी यह बात कहो, किस तरह समझ में आती है॥

बदराय—(चापलूसी के ढंग से) ठीक कह रहे हैं—लक्ष्मी पति! दुश्मन का विश्वास करना, अपनी नादानी जाहिर करना है। जिस दुश्मन का सिर काटने की बहादुरी दिखाना चाहिए, उसी के क़दमों में सिर झुकाना—अक़्लमन्दी की कब्र खोदना है। सोचिए—श्रीपाल के साथ में आपने कौन-सी ऐसी बात उठा रखी है, जो आप उनसे रहम की उम्मीद रखते हैं।

नज़र अपने किए पर डालिए बुनियाद से पहिले।
कि जिससे बाद को उस मजे में सेहत मिले॥

धवल—(खुश होते हुए) ठीक! ठीक कह रहे हो—बदराय। आप की राय की मैं कद्र करता हूँ! मेरा भी यही ख़याल है, कि दुश्मन के क़दमों में गिरने से मौत के क़दमों में गिरना बेहतर है।

बदराय—(दबंगपन से) मौत! मौत के क़दमों में गिरें वह, जो किसी मर्ज़ की दवा नहीं। आपकी हस्ती, मामूली हस्ती नहीं है। आप अपने दुश्मन को मौत के दामन में लिटा सकते हैं। एक बार अगर श्रीपाल बच गया है, तो जरूरी नहीं कि हर बार वह बचता चला जाय।

जला सकते हो पल में उसके अरमानों की बस्ती को।
मिटा सकते हो अपनी हिकमतों से की उस हस्ती को॥

धवल—(खुश होकर) क्या सच? मैं उससे फ़तह पा सकता हूँ?

बदराय—(दृढ़ता से) बेशक!

धवल—(अधीर होकर) बचाइए-बचाइए—बदराय! तो मुझे

उस दुष्ट के पंजे से अभय दिलाइए। उस संकट के समय में भी आपने ही मेरी सहायता की थी, इस बार भी मुझे मदद दो। मैं तुम्हें मुँह माँगा इनाम दूँगा। यह लो—(गले से रत्न-हार उतार कर देता है।)

नेकराय—(सिर धुनते हुए-स्वगत)।

है जिसके दिल में ग़रूर जीवित—
न होगी उसके हृदय की शुद्धिः!
ये सच के ऊपर टिकी है पंक्ती—
कि—विनाश काले विपरीति बुद्धिः !!

(प्रगट) धवलराय जी! एक बार पहले भी आप इस मीठे-ज़हर को पी चुके हैं, जिसे पीने के लिए आज फिर तैयार हो रहे हैं। मेरी आरोग्यता की ओर ले जाने वाली कड़ुवी बातें आपको नापसन्द है, तो मैं स्वयं इस रास्ते से हटा जाता हूँ, जो भला मालूम दे करते जाइए। (अभिवादन के साथ जाता है)

धवल—(उपेक्षा से देखते हुए) हुः ह! (फिर बदराय से) हाँ, तो कोई तर्कीब निकालिए—

न बाकी बचे, हालाहल उगलने को जो मुँह खोले।
मिटे दुश्मन, कि जिससे दुश्मनी का ख़ात्मा होले॥

बदराय—(हार लेकर, हर्षित स्वर में) बेशक, ऐसी ही एक तर्कीब मैं अपने पास रखता हूँ। आप जानते हैं—संघपति कि श्रीपाल समुन्दर से निकल कर, एक अजनबी राहगीर की तरह वहाँ पहुँचा है। कोई उसे वहाँ नहीं जानता-पहिचानता। और इसीलिए हम उसे नीच वर्ण साबित कर, फाँसी पर चढ़वा सकते हैं।

धवल—(उतावली से, मुस्कराते हुए) किस तरह?—किस तरह बदरायजी?

बदराय—(दबंगपन के साथ) किस तरह ? जानना चाहते हो ? क्या यह नहीं जानते कि राजे महाराजे—बड़े लोगों के—आँखें नहीं होतीं, सिर्फ कान होते हैं। वे आँखों देखी घटना पर यक़ीन नहीं, कानों सुनी बातों पर विश्वास करते हैं। हम उनके कानों में यह आवाज़ पहुँचाएँगे कि श्रीपाल नीच जातीय पुरुष है। मेरा अनुमान है, कि कुंकुम द्वीप-नरेश क्रोध में डूब जायेंगे, और सज़ाए मौत तजवीज़ करेंगे।

सहन होगा न ये हर्गिज़, दरिद्री स्वर्ग को पाले।
दुलारी राज-कन्या को, कोई बदज़ात अपनाले॥

धवल—(जिज्ञासा से) लेकिन इस सफ़ेद-झूँठ को वहाँ तक पहुँचाएगा—कौन ?

बदराय—(दर्प के साथ) पैसा ! पैसा सब कुछ करा सकता है-संघपति। पैसे के लिए लोग धर्म-कर्म छोड़ देते हैं। जान तक होम देते हैं। मैं अभी नक्क़ालों को बुलाकर दर्बार में भेजता हूँ। वे लोग पैसे की खातिर श्रीपाल को अपना कुटुम्बी—अपना बेटा—साबित कर देंगे। और वह स्थिति ला देंगे, कि महाराज क्रोध से तमतमा उठेंगे।

धवल—(हर्षोन्मत्त होकर) शाबाश !—

ख़ुशी से दिल उमड़ता है, समझ रूपांश होती है।
तुम्हारी अक़्लमन्दी पर ज़ुबाँ खामोश होती है॥

बदरायजी ! फ़ौरन नक्क़ालों को समझा-बुझाकर, दर्बार की ओर रवान: कीजिए ! याद रखिए—जब तक श्रीपाल की जिन्दगी क़ायम है, मैं खतरे से बाहर नहीं हूँ।

बदराय—(दृढ़ता के साथ) जानता हूँ—संघपति ! आप बे फ़िक्र

रहिए। समझ लीजिए कि श्रीपाल को फाँसी लग गई।

रंजोगम पैसे में, वैसे ही ख़ुशी पैसे में है।
मौत, पैसे में छिपी है, जिन्दगी पैसे में है॥

धवल—(अशर्फियों की थैली देते हुए) यह लो, पैसा।

बदल कर झूँठ को सच में, सचाई पर फ़तह पालो।
कि अमृतको ज़हर कह दो, कि दिनको रात कह डालो॥

बदराय—(ख़ुशी से थैली उछालते हुए) अभी लीजिए—संघपति!

मैं ऐसी चाल चलता हूँ कि दुश्मन दंग रह जाए।
न अपना मुँह छिपाने तक को दुनिया में जगह पाए॥

(जाता है।)

(पर्दा गिरता है।)

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—कुंकुम द्वीप का राज महल, राजकुमारी गुणमाला श्रृंगार कर रही है। एक शीशा सामने रखा है। चौकी पर श्रृंगार-दान तरह तरह के क़ीमती वस्त्र टँगे हैं।)

गुणमाला—(ख़ुशी के स्वर में, माथे पर सिन्दूर लगाते—दर्पण देखते हुए) सौभाग्य-चिन्ह—प्राण-वल्लभ के उपहार—विराजो, मेरे माथे पर विराजो। वे हृदय में विराजते है, तुम मस्तक पर विराजो।

तुम्हारी हैसियत कुछ कम नहीं है, उनकी इज्ज़त से।
बँधे हो कौन जाने कब से तुम औरत की क़िस्मत से॥

(गोल बिन्दा लगाने के बाद, देखते हुए) सुन्दर! कितने सुन्दर हो तुम! तुम्हारी चन्द्रमा-सी गोलाई के भीतर—प्राणपति मुस्करा रहे हैं। उगते सूर्य की आभा को ठुकराने वाली तुम्हारी

लालिमा उनके प्यार को प्रगट कर रही है। सुहाग-सिन्दूर! जीवन की अन्तिम साँस तक तुम मेरे पास रहो—यही मेरी प्रार्थना है। स्वीकार करोगे?—बोलो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। कह दो—बिलम्ब न करो कह दो—'हाँ! रहूँगा!'

(इसी समय टँगा हुआ एक वस्त्र माथे मे रिगड़ता हुआ गिरता है, बिन्दी बिगड़ जाती है।)

(घबरा कर) मिट रहे हो, मिट रहे हो? यह क्या हो रहा है? न मिटो, न मिटो; रहम करो मुझ पर! (फिर बनाती है।)

दासी—(घबराहट के साथ प्रवेशकर, हँधासे स्वर में) क्यों बना रही हो—रानी? पोंछ डालो—सुहाग-सिन्दूर! जिसके आधार पर इसे मस्तक पर चढ़ाने चली हो, वह जीवन-धन फाँसी के तख्ते पर खड़ा है।

गुण०—(हैरत में आकर) क्या? मेरे प्राणेश्वर के गले में फाँसी का फन्दा डाला गया है? कहो, कहो—जल्द कहो, क्यों हुआ है—ऐसा?

दासी—(रोते हुए) ज्यादह हाल मैं नहीं जानती - स्वामिनी! इतना ही सुना है कि कुँवर श्रीपाल नीच जातीय हैं, नक़्क़ालों की सन्तान हैं। आज दर्बार में उनके कुटुम्बियों ने उन्हें पहिचान कर, प्रगट कर दिया। और इसी, वंश छिपाने के भारी क़ुसूर पर महाराज ने क्रोधित होकर उन्हें फाँसी की आज्ञा दी है।

गुण०—(मदहोश होकर) फाँसी की आज्ञा?—फाँसी की आज्ञा दी है उन्हें?—(मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं।)

(पर्दा गिरता है।)

छटवाँ दृश्य

[स्थान—बधस्थल ! समीप ही फाँसी का तख़्ता लगा है। सिपाहियों की देख-रेख में, हथकड़ी बेड़ी से मजबूर, महाराज श्रीपाल बैठे हैं मुँह पर मुस्कराहट है।]

श्रीपाल—(स्वगत) कहो, और अब क्या तमाशा दिखाना सोच रहे हो? एक दीन की तरह, यहाँ तक ले आए—मैं चुपचाप तुम्हारी कार-गुजारी देखता रहा, अब क्या जान लेकर ही रहोगे?—भाग्य बड़ा शक्तिशाली है तू!

लगा सकता है दम भर में तू तीखे घाव तीरों के।
नहीं मुश्किल, कि डलवा दे, गले में हार हीरों के॥

(हथकड़ियों की ओर देखते हुए) ये एक झटके में टूटने वाले लोहे के बन्धन मुझे बाँधे नहीं रख सकते। (सिपाहियों की ओर) ये मुट्ठी भर अन्न पर गुलामी ख़रीदने वाले सिपाही—क्या मुझे क़ैद रख सकेंगे? मगर नहीं, मुझे अपना बल प्रगट नहीं करना, भाग्य-बल के पीछे चलना है! देखना है, कि और क्या-क्या दिखाता है? (गुणमाला का भागते हुए प्रवेश)

गुण०—(उतावली के साथ) प्राण-वल्लभ! प्राणेश्वर!! यहाँ हो, तुम? जहाँ पर मृत्यु नाच रही है—विनाश हँस रहा है। मेरे हृदय से खींच कर कौन ले आया—यहाँ?

श्रीपाल—(स्व-गत) दुर्भाग्य! (प्रगट) सुन्दरी! घबराओ नहीं, शान्त होकर कहो—क्या कहना चाहती हो।

गुण०—(संयत होकर) मैं पूछती हूँ—सचसच कह दीजिए कि आप कौन हैं?

श्रीपाल—मैं? उन्हीं नक़्क़ालों के बंश का एक व्यक्ति हूँ, जिन्होंने आज भरे-दर्बार में मेरी बाँह पकड़ कर मुझे अपनाया था। सुन्दरी! मुझे क्षमा करो—मैंने धोखा देकर—

तुम्हारे साथ शादी का अपराध किया है। तुम्हारे पिता ने ठीक ही मुझे प्राण-दण्ड की आज्ञा दी है।

गुण०—(आँखें पोंछते हुए) न, बहकाओ प्राणनाथ ! पिता ने क्रोध की आग में विवेक को भस्म कर यह मूर्खतापूर्ण न्याय किया है। उन्होंने नहीं देखा कि रूप, शील, साहस और बल, हीनकुल में जन्मे उन नरकालों में नहीं है, जो आप में मौजूद हैं ! क्रोध और कुलीनता के घमंड ने उनकी आँखें फाड़ दीं—जो पत्थर और हीरे के फ़र्क़ को भी वह न देख सके। लेकिन मैं प्रेम की तेज़ आँखें लेकर आई हूँ—मुझे मत बहलाओ—प्राणाधार ! मैं प्रार्थना करती हूँ मुझे अपना सही परिचय दे दो।

श्रीपाल—(सरलता से) सुन्दरी ! मैं ठीक ही बतला रहा हूँ—कि मैं हीन-कुल हूँ।

जो न्यायालय में परखा जा चुका है न्याय के बल पर !
तुम्हें उस न्याय में भी हो रहा सन्देह है क्यों कर ?

गुण०—(दुखित-चित्त होकर) प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! इतने कठोर न बनो, मुझ ग़रीबिनी की ओर देखो ! यह हँसी का समय नहीं है। मैं तुम्हें धर्म की शपथ खिलाती हूँ—वही सच्चा परिचय दे दो—जो एक बार मुझे पहले भी दे चुके हो।

पड़ी मझधार में नौका, भँवर में डूब जाने को।
बचेगी समय रहते ही, जो आओगे बचाने को॥
छुड़ाऊँगी मैं क्या तुमको; मैं ख़ुद अबला हूँ, बेकस हूँ—
मैं आई हूँ तुम्हारा ही चरण का शरण पाने को॥

श्रीपाल—(गंभीरता से) प्राण प्रिये ! शपथ की डोर में बाँध कर मुझे विवश कर रही हो, यह नहीं सोच रहीं, कि

आज सचाई भी सबूत की मुहताज है। अगर मैं कहूँ कि मैं चम्पापुर का नरेश हूँ—तो कौन मानेगा—इसे? जवाब दो मुझे?

गुण०—(रोते हुए) तो क्या सचाई की चमक बदकारियों की खाक में छिपी रह कर, मेरे सुहाग को लूट लेगी? नहीं; यह नहीं होगा—मेरे देवता!

समर्पण कर चुकी हूँ अपना तन-मन धर्म-धन जीवन।
मैं कर दूँगी इन्हीं चरणों में अपने प्राण अब अर्पण॥

श्रीपाल—(संयत-स्वर में) राजकुमारीजी! लौट जाओ। मुझे भाग्य के बनाए हुए रास्ते पर चलने दो। देखने दो वह मुझे कहाँ पहुँचाना चाहता है?

गुण०—(अचरज में)भाग्य के रास्ते पर जाना चाहते हो? जाओ, लेकिन क़दमों में पड़ी हुई स्त्री का सौभाग्य लेकर न जाओ। न जाओ—प्राणनाथ! (दामन फैलाकर) मैं तुमसे अपने सुहाग की भीख माँगती हूँ।

श्रीपाल—(कुछ सोचने के बाद) मेरा सही परिचय चाहती हो?

गुण०—(सिर झुका कर) हाँ!

श्रीपाल—(दृढ़-स्वर में) तो समुद्र के किनारे पर लगे हुए, धन-कुबेर धवलराय के जहाजी काफ़िले में रयनमंजूषा कुमारी नाम की सुन्दरी की तलाश करो, वह मेरी स्त्री है, सब सही हाल मेरा उसे मालूम है। वह बता सकती है कि मैं कौनहूँ और क्यों समुद्र में डाला गया?

गुण०—(हर्षित होकर) रयन मंजूषा कुमारी! मेरे—सुहाग की लाली। कहाँ हो तुम? बहिन! मेरी सहायता करो।

नहीं अब छिप सकोगी तुम, जरूरत की निगाहों से।
स्वयं ही दौड़ी आयोगी, पिघलकर मेरी आहों से॥

(तेज़ी के साथ जाती है।)

(पर्दा गिरता है।)

सातवाँ दृश्य

[स्थान—वधस्थल ! महाराज श्रीपाल फाँसी पर टँगे हैं । जल्लाद डोरी खींचने की प्रतीक्षा कर रहा है । महाराज भूमण्डल तथा अन्य दर्बारी खड़े हैं । श्रीपाल शान्त हैं, महाराज का मुँह क्रोध-पूर्ण है ।]

भूमण्डल—(श्रीपाल से) ओ, राज्य-वंश के अपराधी ! क्या तुझे कहना है—कुछ ?

श्रीपाल—(संक्षेप में) सिर्फ़ यही, कि भगवान आपको न्याय करने की बुद्धि दें ।

भूमण्डल—(क्रोध से) तो क्या इस प्राण-दण्ड को अन्याय कहना चाहता है ? एक उच्च कुलीन राजकुमारी के जीवन को बरबाद करने वाले धूर्त्त—तेरी असलियत सामने आ गई, अब तेरी कोई बात क़ाबिले इत्मीनान नहीं । बोल, आख़िरी ख़्वाहिश क्या है ?

श्रीपाल—(संक्षेप में) यही, कि जल्दी से जल्दी आप अपना कर्तव्य पूरा करें ।

भूमण्डल—(घूर कर देखते हुए) हूँ ! अपराध दण्ड भोगने के लिए—व्यग्र हो रहा है—क्यों ? तो लो—एक दो—

(जल्लाद सँभालता है, उसी समय राजकुमारी गुणमाला का मालिन वेश रयन मंजूषा कुमारी के साथ प्रवेश, रयन मंजूषा श्रीपाल की ओर देखती रहती है ।)

गुण०—(तेज़ी से) ठहरिए पिताजी ! विवेक हीनता से हाथ खींचिए । अपने हाथों अपनी कन्या का सुहाग पोंछने की मूर्खता से बाज़ आइए ।

भूमण्डल—(दंग रह कर) मूर्खता से ?

गुण०—(दृढ़-स्वर में) हाँ, मूर्खता से ! मैं यह प्रमाणित करना चाहती हूँ कि महाराज श्रीपाल अकुलीन नहीं हैं । उन्हें नीच साबित करने के लिए जाल रचा गया है,

जिसमें कि आप फँसे हैं। (रयन मंजूषा की ओर) ये हँस द्वीप की राजकुमारी श्रीपालजी का सही परिचय देकर आपकी आँखों में ज्योति डालने आई हैं।

भूमण्डल—(पराजित की तरह रयन मंजूषा से) देवी ! क्या सचमुच मैंने श्रीपाल का अनादर कर, भूल की है ?

रयन—(दृढ़ता से) निस्सन्देह ! भूल नहीं, भयंकर भूल ! महाराज श्रीपाल चम्पापुर के नरेश और मेरे पति हैं। हम दोनों ही धवलराय के जहाजों पर सफ़र कर रहे थे, कि उस नराधम की नज़र में मुझे देखकर बदी आ गई। धोखे से प्राणाधार को समुद्र में गिरा कर, मुझे सताने के लिए कमर कसी। लेकिन मेरे भाग्य ने मेरा साथ दिया—देवताओं ने मेरी रक्षा की ! भगवान की भक्ति और शरीर के बल से समुद्र को तर कर मेरे स्वामी ने आपके राज्य में प्रवेश किया ! जहाँ आपने उन्हें अपनी दुलारी कन्या भेंट की। संयोग की बात कि जहाज भी यहीं आ लगे, और दूसरे द्वीपों की तरह धवलराय को बहुमूल्य रत्नों की भेंट लेकर आपके दर्बार में आना पड़ा !

भूमण्डल—(शीघ्रता पूर्वक, सिर थाम कर ज़मीन पर बैठते हुए) ओफ़ ! और वहाँ उस दुराचारी की कुँवर श्रीपालजी से मुड़भेंठ हुई। देखकर थर-थर काँपने लगा। बीमारी का बहाना कर उल्टे पैरों लौट पड़ा। मगर मुझ आँखों के अन्धे को कुछ नहीं सूझा—ओफ़ ! बड़प्पन की शान ने मुँह दिखाने तक को जगह नहीं रहने दी।

छिपती न छिपाये से, कभी प्यार की नज़र।
उठती न उस तरह से ख़ताबार की नज़र॥

मैं भारी गुनहगार हूँ-मुँह कैसे दिखाऊं ?
फट जाय, गर ज़मीन तो मैं उसमें समाऊँ ॥

गुण०—(खुशी से स्वगत) खुलीं ! खुलीं !! मेरे अन्धे पिता की आँखें खुलीं ।

आँखों में उतरने लगीं फिर ज्ञान की आँखें ।
रास्ता दिखाने लग गईं, भगवान की आँखें ॥

रयन—(संयत-स्वर में) पिताजी ! आप धवलराय को नहीं जानते, वह पैसे के बल पर दुनिया की सारी बदकारियों को खरीदना चाहता है । नक्कालों के द्वारा महाराज श्रीपाल को अपमानित कर, मौत की रस्सी में लटकवा देना, उसकी चालबाजियों का एक छोटा-सा नमूना है ।

नहीं रूहे-चमक उसमें जहन्नुम का अँधेरा है ।
फ़रेबी और ख़ूनी है, वो अस्मत का लुटेरा है ॥

भूमण्डल—(क्रोध से दाँत पीसते हुए) धवलराय ! धवलराय ! तूने मुझे मूर्ख प्रमाणित कर दिया । ओफ़ ! जिस जमाता को आदर के साथ गले लगा कर, कन्या भेंट की थी, उसी को फाँसी की रस्सी में बाँधने का हुक्म दिलवा दिया । याद रख—नर-पिशाच ! इसका बदला लेकर छोड़ूँगा ।

गुण०—(उठाते हुए) उठिए, उठिए पिताजी ! पश्चाताप की अग्नि में अपने को न जलाइए । हो चुका, वह वापस नहीं आयेगा ।

समझ से काम लेने का, सबक़ सीखे हुए होते ।
तो मुमकिन था न अपनी मूर्खता पर इस तरह रोते ॥

(भू-मण्डल उठ कर श्रीपाल के पास जाते हैं, गले का फन्दा खोल फाँसी से उतार कर आगे लाते हैं । रयन मंजूषा पैर छूती है । नीची नज़र किए उदास चित्त भूमण्डल श्रीपाल के पैरों पर गिरते हैं)

श्रीपाल—(भू-मण्डल को उठाते हुए) हैं ? यह क्या कर रहे हैं—कुंकुमपुर नरेश ! उठिए—उठिए पुत्र के पैरों पर पिता का गिरना शोभा नहीं देता।

भू०—(आँखें पोंछते हुए) क्षमा करो। क्षमा करो—कुँवर श्रीपाल मेरे अपराध को क्षमा करो।

मैं लज्जित हूँ, दुखी हूँ, दीनता का भार रखता हूँ।
क्षमा के माँगने तक का नहीं अधिकार रखता हूँ ॥

श्रीपाल—(गंभीरता से) नहीं: आपने कोई अपराध नहीं किया पिताजी ! सुख-दुख देने वाला असल में भाग्य होता है। मनुष्य बेचारा भाग्य के इशारे पर ही अच्छा-बुरा करने पर उतारू होता है।

'सगा' बनता है दुश्मन, दुश्मनी के ढँग निभाता है।
इशारा भाग्य का पाकर, 'पराया' काम आता है ॥
नहीं कोई सगा अपना, नहीं कोई पराया है—
कि अपना भाग्य ही सुख-दुख की घड़ियों को दिखाता है।

भू०—(हर्ष में) धन्य हो, साधु पुरुष ! धन्य हो तुम।

(पर्दा गिरता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—कुंकुम द्वीप का राज दर्बार। महाराज श्रीपाल, महाराज भू-मण्डल और अन्य दर्बारी बैठे हैं। हथकड़ी बेड़ी से जकड़े धवलराय को धक्के देते हुए सिपाही दर्बार में प्रवेश करते हैं। पीछे-पीछे नेक राय आते हैं—उदास चित्त !)

प्रहरी—(अभिवादन करते हुए) लीजिये, बदकारों का सरताज हाज़िर है—महाराज !

भू-मण्डल—(क्रोध-पूर्वक) आगया ? आगया वह दुष्ट जिसकी

सूरत देखने से ज़हर चढ़ता है। जो गाय की शकल में ख़ूँख़ार भेड़िया है।

चढ़ा दो शीघ्र ले जाकर, इसे फाँसी के तख़्ते पर।
मिटा दो इसकी हस्ती को, क़यामत की हवा बन कर॥

श्रीपाल—(जल्दी से) ठहरिए, ठहरिए महाराज! सज़ाये मौत देने के पहले मुझे कुछ कहने का मौक़ा दीजिए।

भूमण्डल—(कोमलता पूर्वक) क्या कहना चाहते हैं—कुँवर साहेब?

श्रीपाल—(गंभीर होकर) कहना चाहता हूं—कि धन कुबेर धवराय की तौहीन कर, आप मेरे हृदय को दुःख पहुँचा रहे हैं।

भूमण्डल—(चकित होकर) दुःख?—ताअज्जुब! हैरत!! क्या यह शैतान इस लायक नहीं है, कि मौत से भी बढ़कर सज़ा इसे दी जाय।

श्रीपाल—(दृढ़ता के स्वर में) नहीं! और वह इसलिए नहीं, कि धवलराय मेरे धर्म-पिता हैं।

धवलराय—(स्वगत) यह क्या सुन रहा हूँ? कैसी पवित्र कैसी मधुर आवाज़ कानों में आ रही है। ओफ़····! आज भी; अब भी वह मुझे पिता कह कर पुकार रहा है। धिक्कार पिता कहाने वाले नालायक़ तुझे हज़ार बार धिक्कार!

तू इतना हो गया अन्धा, जो ख़ुद को भी न पहिचाना।
सुधा को छोड़, ओठों से लगाया विष का पैमाना॥

भूमण्डल—(तेज स्वर में) श्रीपाल—कुँवर श्रीपाल! जरा विचार कर देखो, जिसे तुम धर्म-पिता के नाम से पुकार रहे हो, उस नरपिशाच ने तुम्हारे साथ कैसा सुलूक किया है? कितना सताया है तुम्हें?

श्रीपाल—(भोलेपन के साथ) नहीं ! उन्होंने मुझे नहीं सताया—पिताजी ! सताने वाला तो मेरा भाग्य था। घटना की गहराई में उतरियेगा, तो मानना होगा कि उन्होंने मेरा उपकार किया है।

भूमण्डल—(ताज्जुब से) उपकार ?

श्रीपाल—(दृढ़ता से) हाँ, उपकार ! यह उन्हीं का उपकार है, जो मुझे आज आपके दर्शन हो रहे हैं। अगर वह समुद्र में न गिराते, तो राज कन्या का समागम स्वप्न बना रहता।

धवल—(स्वगत) डूब, डूब ! चुल्लू भर पानी में डूब मर। (गहरी साँस लेते हुए) उफ़ ! कितना बुरा किया है मैंने, मुँह दिखाने को जगह नहीं बची है। लेकिन इस देवता के हृदय में ज़रा भी स्याही नहीं, जिस तरह कुदालों से खोदने-तोड़ने पर भी ज़मीन लहलहाती खेती के रूप में खिलखिला पड़ती है, उसी तरह यह क्षमाशील बुराई का बदला भलाई से दे रहा है।

रहा मक्कारियों में ही, हमेशा मेरा मन मोहा।
मैं वह लोहा हूँ जो पारस को छूकर भी रहा लोहा॥

नेकराय—(हर्ष गद्‌गद् होकर) धन्य ! धन्य हो श्रीपाल !

दुखों में, संकटों में मानवोचित ध्यान रक्खा है।
तुम्हीं जैसों ने भारतवर्ष का सन्मान रक्खा है॥

भूमण्डल—(चकित होकर देखते हुए) श्रीपाल ! विचार कर जवाब दो कि तुम क्या चाहते हो ?

नहीं चाहो, उसे जो चाहने की चाह रखते हो।
अगर तुम अपने सुख-दुख की भी कुछ परवाह रखते हो॥

श्रीपाल—(सविनय) कुंकुमपुर नरेश ! मैं धवलराय की रिहाई

की माँग पेश करता हूं। और उम्मीद करता हूँ कि महाराज स्वीकार करेंगे।

मैं अपने सुख-व-दुख का मन में उतना मान रखता हूँ।
कि जितना दूसरों के दुख सुखों का ध्यान रखता हूँ॥

भूमण्डल—(दयनीय-स्वर में) कुँवर श्रीपाल। मैं तुम्हारे आग्रह को टालने का साहस नहीं करता। लेकिन यह मैं जरूर कहूँगा कि माँग अनुचित है, धवलराय रिहाई के योग्य नहीं है।

श्रीपाल—(गंभीर-स्वर में)।

भलाई कीजिए जो बन सके, दो दिन की मंजिल में।
मुनासिब, ना मुनासिब का न रखिए भेद कुछ दिल में॥

भूमण्डल—(दृढ़ता के साथ) लेकिन साँप को दूध पिलाने का अर्थ जहर को पैदा करना होता है—कुँवर साहब! भलाई भलों के साथ की जाती है, जो उसकी क़द्र करता है।

श्रीपाल—(गंभीरता से) तो क्या महाराज का यह ख़याल है, कि बुरों को बुराई के रास्ते पर ही ढकेलते रहना, समझदारी है। सच तो यह है कि इसी रवैये पर बुरों की तादात बढ़ती है। अगर उन्हें भी आजादी के साथ भलाई का रस चखने दिया जाय, तो साँप का दिल भी उसके शरीर की तरह से मुलायम बनाया जा सकता है।

पतित पावन है वह मजहब जो स्याही दूर करता है।
'बुरे' को जो 'भले' के नाम से मशहूर करता है॥

धवल—(साँस खींचते हुए स्वगत) ओफ़!…पैर लड़खड़ा रहे हैं, कलेजे में दर्द—दिल में सुइयाँ चुभ रही हैं। (दिल को हाथों से दबाता है) जुबान पर काँटे उग आए हैं।

नतीजा आ रहा है सामने जैसे बुराई का।
मैं जीना जी रहा हूँ, विवश होकर बेहयाई का ॥

भूमण्डल—(निरुत्तर होकर) बुद्धिमान राजकुमार ! बहस मैं तुम से नहीं करता। सिर्फ़ इतनी प्रार्थना करता हूँ कि धवलराय की रिहाई का आग्रह छोड़ दो।

श्रीपाल—(मुस्कराते हुए) मेरे धर्म पिता को फाँसी के तख्ते पर खड़ा देखकर क्या आप का हृदय नहीं दहलेगा—कुंकुमपुर नरेश ? जिद न कीजिए महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिए, कि मैं स्वयं उन्हें आज़ाद कर दूँ।

धवल—(कातर होकर स्वगत) मौत ! मौत !! कहाँ है तू ? मुझे अपने में दामन में छिपाले। छिपाले ! नहीं, मैं अपना मुँह नहीं दिखा सकता। क़दमों में गिरकर माफ़ी भी नहीं माँग सकता। नहीं माँग सकता—

नज़र उठती नहीं ऊपर, कि दिल रह-रह के रोता है।
नहीं मालूम था, अंजाम इसका ऐसा होता है ॥

भूमण्डल—(विवश होकर) अगर तुम्हारी यही इच्छा है, यही जिद है—तो तुम्हें अधिकार है, जो चाहो करो।

श्रीपाल—(प्रसन्न चित्त हो) नहीं। इस तरह नहीं, राज-आज्ञा होनी चाहिए। जिस राज्य-बल पर यह बाँधे गए हैं, उसी राज्य-द्वारा बन्धन-मुक्त की आज्ञा भी इन्हें प्राप्त हो।

भूमण्डल—(प्रेम-पूर्ण) यह क्या कह रहे हो, राजपुत्र ! इन शब्दों से मुझे वेदना होती है। राज्य तुम्हारा है, तुम राज्य के हो। यह समझकर ही तुम्हें मुँह खोलना चाहिए। जो मेरी आज्ञा है, वही तुम्हारी आज्ञा है—कोई फ़र्क नहीं है।

किसी भी बात को मुँह ताकना बेकार है तुमको।
हो तुम इस राज्य के राजा, सभी अधिकार है तुमको ॥

[श्रीपाल प्रसन्न-चित्त धवलराय के पास आकर बन्धन खोलते हैं। धवलराय काँपता है। नीची नज़र से देखता हुआ दिल पर हाथ रखता है। गहरी साँस आती है, हृदय की गति बन्द हो जाती है—हार्ट-फेल ! धड़ाम् से गिर पड़ता है। सब चकित, दंग रह जाते हैं।]

श्रीपाल—(रोते हुए) पिताजी ! पिताजी…! कहाँ गए तुम ? बोलो ? बोलो…? एक बार तो बोलो ?

नेकराय—(रोते, आँखें पोंछते हुए) न रोओ श्रीपाल। संघपति सज़ा पा चुके !—

नहीं बाक़ी बचा है बोलने को बोल जो बोलें।
गुनाहों ने दबोचे हैं, वे कैसे अपना मुँह खोलें ॥

(सब लाश पर झुके रह जाते हैं—शोक-पूर्ण)

ड्राप

तीसरा-अंक

पहला दृश्य

[स्थान—कुंकुमपुर नगर का राजमहल ! शयन-कक्ष। समय—रात के बारह बजे। बहुमूल्य पलंग पर महाराज श्रीपाल सो रहे हैं, पास की चौकी पर लैम्प (दीपक) जल रहा है। नैपथ्य में बारह घन्टे बजते हैं, फिर गज़र होता है। श्रीपाल चौंक कर उठ बैठते हैं, आँख खुल जाती है।]

श्रीपाल—(पलंग पर बैठे हुए)।

जगाया गुलगुला कर, किसने मुझको नरम पाँखों से ?
कि किसने छीन ली है नींद सहसा मेरी आँखों से ?

अर्ध-रात्रि ! बारह बज रहे हैं। दुनियाँ की सारी आँखें निद्रा की गोद में पलक बन्द किए विश्राम कर रही हैं। लेकिन मेरी आँखें घड़ियाल की ध्वनि ने खोल दी हैं। चैतन्य लौटा दिया है। अवश्य ही इस निद्रा-भंग का कोई कारण होना चाहिए। (कुछ सोच कर) बारह…? इन बारह घन्टों की आवाज़ आज क्यों मेरे हृदय से टकरा रही है ? क्यों बार-बार मेरे कानों में गूँज रही है ! (चुप रहकर) समझा !—समझा ओफ़… ?

जिसे भूला हुआ था, पाठ वह अब याद आया है।
मैं समझा, क्यों मुझे अज्ञात-ताक़त ने जगाया है॥

टनटन कर बजने वाली घड़ियाल की ध्वनि ! तू ने ये दोनों आँखें ही नहीं खोलीं, मेरी हृदय की आँखें भी खोल दी हैं। वचन-हत्या की—बुराई से बचा लिया है मुझे।

मैं भूला वायदा अपना, फंसा बन्धन ने माया में।
उलझ ऐसा गया दिल, ज़िन्दगी की धूप-छाया में॥

बारह……? आज बारह वर्ष पूरे होने में कुछ ही दिन बाक़ी रहे हैं। ख़ुशी है कि मैं अपना वादा पूरा कर सकता हूँ। लेकिन ख़ुदगर्ज़ी के इस पाप से भी रिहा नहीं हूँ, कि संकटों की आग से निकाल कर सुख और सौन्दर्य की छाया में रखने वाली प्यारी मैना सुन्दरी की मोहनी मूरत को भी भूल बैठा। वह बेचारी प्रतीक्षा की गोद में बैठकर एक-एक क्षण मुश्किल से बिता रही होगी, और मैं यहाँ सैकड़ों राजकुमारियों का स्वामित्व लेकर मौज उड़ा रहा हूँ। कितनी नीचता है।

वह दिन भी सामने है जब, कि तन से कोढ़ चूता था।
दबाते नाक थे, मुश्किल से घर वाला भी छूता था॥
नहीं सुख था किधर भी, मैं भिखारी-सा भटकता था।
मिलेगा इतना वैभव कौन तब यह जान सकता था॥

कि पति-सेवा की ताक़त ने मुझे इतना बढ़ाया है।
नहीं था ध्यान में वह काम तुमने कर दिखाया है॥

मैना सुन्दरी ! मैना सुन्दरी तुम वह नारी हो, जिस पर पति गर्व कर सकता है। मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ। लज्जित हूँ कि इतने दिनों तुम्हें भूले रहा, मगर मेरे हृदय में तुम्हारे लिए सब से ऊँचा स्थान है—यह विश्वास करो।

तुम्हें भूला, पर नहीं भूला हूँ मैं उपकार को।
भूल सकता 'वर' नहीं हर्गिज़ 'वधू' के प्यार को॥

बस, कल ही कूँच का बिगुल बजना चाहिए। अगर इस में विलम्ब होगा, तो सुन्दरी मुझे नहीं मिलेगी। अवश्य ही वह तपोभूमि में प्रवेश कर सम्बन्धों का बन्धन काट देगी।

समझ बेशक रही है फ़र्ज तक अपने मे अनबूझी।
ग़नीमत यह हुई अब वक्त पर है वक्त की सूझी॥
अगर यह वेश-क़ीमत वक्त भी ग़फलत में ढल जाता।
तो इसमें शक नहीं है, हाथ से हीरा निकल जाता॥

(कुछ रुक कर) विकाम ......वैभव...धन ! इन्हीं चीजों के लिए मजबूर होकर, मैना सुन्दरी मुझे तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ा था, यात्रा करनी पड़ी थी। और आज, वह सब मुझे प्राप्त हैं। अकेले कुंकुम द्वीप में ही मुझे इतना मिला है, कि तुम प्रसन्नता से खिल उठोगी। कुंडलपुर नगर की राजकुमारी चित्रलेखा, कंचनपुर के महाराज वज्रसेन की विलासमनी वग़ैरह नौ सौ कन्याएँ आज मेरी अनुगामिनी हैं।

नज़र के सामने संचित हुआ जब आगे आयेगा।
मुझे विश्वास है, तुमको खुशी में वह डुबायेगा॥

हृदय ! हृदय !! अधीर न बनो। शीघ्र ही तुम्हें सुन्दरी का स्पर्श मिलेगा। जिस दृढ़ता के साथ—बारह वर्ष बाद आने

वाली अष्टमी का वचन दिया था—उसी सावधानी के साथ मैं उसे निभाऊँगा।

नहीं वादा खिलाफी को, मैं अपने सिर खता लूँगा।
किया जाता है पूरा किस तरह इसको बता दूँगा॥
धैर्य रक्खो—धैर्य रक्खो, मैंना सुन्दरी मैं आ रहा हूँ।
तुम्हारी याद—एक क्षण को भी अब व्यर्थ नहीं ठहरने देगी।
बराबर बोझ है दोनों तरफ़, हल्का न भारी है।
उधर है इन्तज़ारी, तो इधर भी बेक़रारी है॥

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी, मैंना सुन्दरी का शयन कक्ष ! समय—रात्रि। पलंग पड़ा है, मैंना सुन्दरी लेटी हुई बातें कर रही है। नेपथ्य में एक दूसरा पलंग बिछा है जिसका कुछ हिस्सा दिखलाई देता है, उस पर महाराज श्रीपाल की माँ कुन्दप्रभा लेटी हैं, जो ज़रा भी दिखलाई नहीं देतीं—सिर्फ़ नेपथ्य से आवाज़ सुन पड़ती है। मैंना सुन्दरी का चेहरा उदास और विरक्त है।]

कुन्द०—(नेपथ्य से) नहीं बेटी ! तुम व्यर्थ ही मन मैला कर रही हो, मैं कहती हूँ श्रीपाल अवश्य अपना वादा पूरा करेगा। वह ज़रूर आयेगा।

मैंना०—(पलंग पर बैठते हुए) ज़रूर आएँगे, लेकिन वायदे पर नहीं। माताजी ! मेरी आशा टूट चुकी है। जैसे-तैसे बारह वर्ष बिता कर, आज अष्टमी की आख़िरी रात पर भरोसा किए बैठी थी, मगर दुर्भाग्य ! कि आज भी उनके दर्शन नहीं हो रहे हैं।

कुन्द—(नेपथ्य से, दिलासा के स्वर में) सो रहो—मैंना सुन्दरी ! हृदय न मुर्झाओ। सुबह होने में अभी बहुत समय है।

मैंना—(ज़रा उग्रता से) समय ? बारह वर्ष का लम्बा समय आशा के सहारे पर, उन्हीं के नाम की माला जपते हुए मैंने काट दिया माताजी ! लेकिन अब निराशा की एक रात पहाड़ हो रही है, काटे नहीं कटती।

नहीं है नींद आँखों में, भरी नस-नस में बेचैनी।
मुझे मालूम देता है कि दिल पर चल रही छेनी ॥

कुन्द—(नैपथ्य से) सच कह रही हो बेटी ! पतिव्रता नारी, पति-दर्शन के लिए इसी तरह व्याकुल रहा करती हैं। लेकिन तुम धैर्य रक्खो, वह अवश्य अपना वचन-पालन करेगा।

मैंना—(गंभीरता से) नहीं माताजी ! अब मुझे इस पर विश्वास नहीं है। वे अवश्य मुझ दासी की याद भूल गए—सुखों में लोग ईश्वर तक को भूल जाते हैं।

कुन्द—(नैपथ्य से) विश्वास करो—मैना बेटी ! मेरा बेटा—श्रीपाल ऐसा कृतघ्न नहीं है। वह तुम्हें और तुम्हारे उपकार को कभी नहीं भूलेगा तुम्हीं ने उसके भाग्य को सौभाग्य में तब्दील किया है, इसे वह ख़ूब जानता है। विदेश की कमाई का वह तुम्हारे पैरों में पटक कर कहेगा—'यह सब तुम्हारी बदौलत है !'

मैंना—(रुलाई के स्वर में) क्षमा करो—माँ जी ! अब मुझे इस दुनिया के वैभव में अधिक मोह नहीं है। मैं अपने वचनों के अनुसार, रात के अन्तिम पल तक उनका इन्तज़ार देखती हूँ—सुबह होते ही सांसारिक-सम्बन्ध तोड़ कर, भगवान से सम्बन्ध जोड़ूँगा।

मिटा दूँगी मैं इस माया को जो बन्धन में डाले है।
कि विषयों में लुभाकर जो अँधेरा मन में डाले है ॥

कुन्दप्रभा—(नैपथ्य से) सब्र, सब्र करो —बेटी ! जल्दबाज़ी से काम बनता नहीं, बिगड़ जाता है। ज़रा ठन्डे हृदय

से सोचो—श्रीपाल जब अपनी धन दौलत लेकर उमड़ते हुए दिल से घर में घुसेगा, और तुम्हें मौजूद न पाएगा; तब उसकी क्या दशा होगी? हृदय न फट जाएगा? धैर्य न खो देगा? कहो, तुम्हीं कहो—बेटी! वह किसे दिखायेगा अपना वैभव?

मैना—(जल्दी से) ठहरो, ठहरो माताजी! ये लुभावनी बातें सुनाकर, मुझे विराग के रास्ते से न डिगाओ। मैं स्वयं ही अपने को कमज़ोर पा रही हूँ।

उधर तो प्राणपति की याद दिल को डगमगाती है।
इधर कर्तव्य की ज्वाला उमंगों को जलाती है॥
समझ में कुछ नहीं आता, समझ मुश्किल में आई है।
किधर जाऊँ कुआँ है इस तरफ़, उस ओर खाई है॥

माताजी! मुझे आशीर्वाद दो, कि मैं अपना कल्याण कर सकूँ, मोह-ममता की ग़ुलामी को तोड़कर, आत्म-आज़ादी की ओर बढ़ूँ। वैभव के चकाचौंध बहुत देख चुकी, अब इच्छा नहीं है। मुझे विराग पाने की आज्ञा देदो—माँ।

कुन्द—(नैपथ्य से) ठहरो, इतनी ज़िद नहीं करते बेटी। इतने दिनों इन्तज़ार किया है, चार-छह दिन और राह देख लो। वह ज़रूर आयेगा, अपना बचन पूरा करेगा।

मैना—(नरमाई से) मैं यह नहीं कहती, कि वे बचन को क़ीमत नहीं जानते? लेकिन भाग्य ने अगर रास्ते में रुकावट डाल दी हो, तो असम्भव नहीं कि वे कुछ देर से आयें। मेरे मानव-जीवन का एक बड़ा हिस्सा बेकार जा रहा है—मुझे धर्म की छाया में विश्राम लेने दो, माँ।

मुनाफ़ा पाने दो, जो महज़बे-मंजिल से मिलता है।
कि ये इन्सान का कालिब बड़ी मुश्किल से मिलता है॥

(इसी समय गाने की आवाज़ आती है।)

गायन

हाँ, हम से सुने कोई अफ़साना ज़िन्दगी का।
शीशे से भी नाज़ुक है पैमाना ज़िन्दगी का॥
गर ज़र ज़मीन जोरू सब कुछ हुआ मुहैय्या—
तो देते हकीमों को ज़ुरमाना ज़िन्दगी का।
दुनियावी उलझनों में उलझा हुआ था तब तक—
लेकर के मौत आई परवाना ज़िन्दगी का॥
मैं ग़र्क़ रहा ऐशो इशरत के समुन्दर में—
जाना न, मौत से है याराना ज़िन्दगी का॥
'भगवत्' की इबादत में हस्ती को मिटाई अब—
दीवाना होके देदे नज़राना ज़िन्दगी का॥

कुन्द—(सुनने के बाद नेपथ्य से) जानती हूँ मैं, कि मानव-जीवन का समय बहुत क़ीमती चीज़ होता है। उससे लाभ उठाना ही बुद्धिमानी है। लेकिन…लेकिन दुनिया में रहकर दुनिया की ओर से आँख नहीं मींची जाती मैना!

मैना—(दृढ़ता से) सच कह रही हो, माँ! लेकिन मेरा हृदय धीरे-धीरे मज़बूत बनता जा रहा है। कोई कमज़ोरी उसका सामना नहीं करेगी। मैं सुबह होते ही दीक्षा ले लूँगी।

नहीं देखूँगी अब हरगिज़ मैं दुनिया की बहारों को।
मैं ठोकर मार दूँगी वासना के झूँठे-प्यारों को॥

कुन्द—(नेपथ्य से) मैं फिर पूछती हूँ—वह अपना वैभव, किसे दिखाकर सन्तोष की साँस लेगा?

मैना—(संक्षेप में) तुम्हें! तुम्हें माताजी! तुम उनकी माँ हो। बेटे का वैभव, माँ देखेगी—हृदय में फूली न समायेगी।

और मुझ सी दासियाँ तो सैकड़ों ही उनके साथ होंगी।
एक मैं न रहूँगी, तो कुछ बिगाड़ न होगा।

कुन्द—(नैपथ्य से) बेटी····!···

मैना—(बात काटकर) कुछ कहो मत माँ! सेवा में कमी हुई हो, भूल हुई हो, मैं उसकी क्षमा चाहती हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा करो।

कुन्द—(नैपथ्य से) बेटी! बेटी क्या तुम भी मुझे छोड़कर चली जाओगी? क्या मैं अकेली रहूँगी?

मैना—(विरक्त-स्वर में) अकेली? दुनिया में सब अकेले हैं—माँ! कोई किसी का साथी नहीं।

अकेला ही ये आता है, अकेला ही ये जाता है।
कमा लेता है जो कुछ धर्म, वह ही साथ जाता है॥

कुन्द—(नैपथ्य से) मैना मैना—बेटी। ऐसा न करो, श्रीपाल के आने तक ठहर जाओ।

मैना—(दृढ़ता से) नहीं माँ! आज अष्टमी की रात भी जा रही है, अब वे अपने वायदे पर नहीं आएँगे।

मुझे भूले हैं, भूले हैं वचन की याद भी दिल से।
समझदारों का कहना है वचन निभता है मुश्किल से॥

(इसी समय महाराज श्रीपाल का द्वार पर (नैपथ्य) से कहना)

श्रीपाल—ग़लत!

वचन देते हैं मुँह से जो, वचन अपना निभाते हैं।
वे भूले मूल्य हैं उसका, वचन जो भूल जाते हैं॥

सुन्दरी! मैं अपने वचन पर उपस्थित हूँ—द्वार खोलो!

मैना—(हर्ष गद्‌गद् होकर) स्वामी! प्राण वल्लभ! आगए! (कुन्द प्रभा से) माताजी, तुम्हारे पुत्र आगए! (नैपथ्य की ओर) ठहरिए, प्राणनाथ! मैं अभी आती हूँ।

(मैना० द्वार खोलने के लिए जाती है प्रसन्न चित्त)

(पर्दा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी, महाराज श्रीपाल, मैना सुन्दरी, रयन मंजूषा गुणमाला वगैरह बैठी हैं। नैपथ्य में वाद्य बजता है]

श्रीपाल—(हर्षित-स्वर में) कितने आनन्द का समय है। चारों ओर आनन्द की ध्वनि सुनाई दे रही है। हृदय खुशी और उमंग में डूब रहे हैं। प्यारी मैना सुन्दरी! यह सब तुम्हारी ही साधना का फल है। तुम्हारी पति-भक्ति का ही चमत्कार है!

मैना—(लज्जित-स्वर में) न शर्माइए, प्राणनाथ! मैं किस योग्य हूँ? आपके भाग्य ने ही आपको सहारा दिया है। उसी ने यह आनन्द की घड़ी, मुझे देखने को दी है।

श्रीपाल—(मुस्कराते हुए) यह सत्य नहीं है—सुन्दरी! सभ्यता का तकाज़ा है। सचाई तो यह है कि भिखारी से भगवान बना देने वाली तुम्हारी ही साधना है, और उसी का यह बल है, कि एक दरिद्र कोढ़ी, देवत्व का सौन्दर्य लेकर, सम्राट के पद पर विराज रहा है। (नैपथ्य की ओर) यह सुना—हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट—एक बहुत बड़ी फौज का कोलाहल—सब तुम्हारा ही यश-गीत गा रहे हैं। (नैपथ्य से कोलाहल सुन पड़ता है; दूसरी ओर) और इधर देखो—ये बड़े-बड़े राजे महाराजों की आठ हजार दुलारी कन्याएँ, विवाह के बन्धन में बंध कर तुम्हारी सेवा करने के लिए मेरे साथ आई हुई हैं। सुन्दरी! यह अपार सम्पत्ति सब तुम्हारे ही भाग्य की देन है।

ये जो कुछ दृष्टिगत है सब तुम्हारा है, तुम्हारा है।
नहीं अधिकार तन पर भी, जिसे कह दें हमारा है॥

मैना—(लज्जित होकर) नहीं, प्रशंसा के बोझ से नारी की कोमलता को दुखित न कीजिए—प्राण-वल्लभ! मैंने ऐसा कुछ नहीं किया, केवल नारी-धर्म का पालन किया है। पति-सेवा नारी का पहला धर्म होता है। उसे ठुकरा कर नारी का परतन्त्र-जीवन सुखी नहीं रहता। दुख है कि मुझमें वह भी पूरा पालन नहीं हुआ है।

नारी कहना बेकार उसे, पति-सेवा से जो रीती है।
नारीत्व मर चुका है, केवल ढाँचा लेकर ही जीती है॥
पति-सेवा की सारी महिमा गायी है वेद-पुराणों में।
बल नहीं चक्र में भी, जितना है पतिव्रता के हाड़ों में॥
पति-सेवा में वह ताक़त है, डाले ज़ुबान पर भी ताले।
अपने कौतुक के कौशल से दुनिया को अचरज में डाले॥

श्रीपाल—(मुदित-मुख से) सत्य कह रही हो प्राणेश्वरी! पति-भक्त-नारी सभी कुछ कर सकती है। और इस छिपे-सत्य को, स्वयं तुम्हीने खोलकर सामने रख दिया है।

दिखलाया तुमने दृश्य ख़ूब, नरको, नारीको शक्ती का।
नारी-समाज का पाठ दिया, ख़ुद अपना कर, पति-भक्ती का॥

राजदूत—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो।

श्रीपाल—कहो क्या समाचार हैं?

राजदूत—उज्जयिनी नरेश महाराज पहुपाल ने शीघ्र ही सेवा में उपस्थित होने का वचन दिया है।

मैना—मैं पूछती हूँ—क्या कुछ कहा उन्होंने?

राजदूत—(झुक कर) नहीं, महारानीजी! वह स्वयं भयभीत हो रहे थे, कि अचानक किसने उज्जयिनी पर चढ़ाई कर दी? आपका शुभागमन सुन कर बहुत ख़ुश हुए हैं।

मैना—जाओ ! उन्हें सन्मान पूर्वक लाना। (राज दूत जाता है)

श्रीपाल—(मैना से) लो, यह अन्तिम इच्छा भी तुम्हारी पूर्ण हो रही है।

मैना—(मुस्कराकर) इच्छा की बात नहीं, पिताजी को इसलिए मैंने बुलाया है कि वे भाग्य की शक्ति देखकर, सही विचारों पर लौट आएँ।

श्रीपाल—(हँसते हुए) या इसलिए बुलाना चाहती थीं, कि अपने वैभव के चकाचौंध से उन्हें अन्धा बनाकर—तिरिस्कार का बदला लिया जाय; अपमानित किया जाय। तुम्हारा ऐसा ख़याल होना भी ग़ैर-मुनासिब नहीं था, क्योंकि उन्होंने तुम्हारी कोमलता का ख़याल न रखते हुए कोढ़ी के साथ ब्याह दिया था। मगर सुन्दरी ! मेरे साथ तो उन्होंने उपकार किया था। उनका अपमान हो, यह मुझे कैसे पसन्द आ सकता है।

दवा दी थी उन्होंने ही जो पीछा मर्ज से छूटा।
चमकने लग गया फिर भाग्य, था जो एक दिन फूटा॥

प्रहरी—(प्रवेश कर, अभिवादन-पूर्वक) उज्जयिनी-पति महाराज पहुपाल आ रहे हैं।

श्रीपाल—आने दो।

पहुपाल—(प्रवेश कर) चम्पापुर नरेश की जय हो।

श्रीपाल—(प्रेम-पूर्वक) पधारिए—पधारिए उज्जयिनी-पति पधारिए।

(खाली कुर्सी की ओर संकेत करते हैं।)

पहुपाल—(लज्जित होकर) आज मेरे हृदय में सुख और दुख, दोनों एक साथ पैदा हो रहे हैं—मैना सुन्दरी ! लज्जा से मस्तक नहीं उठ रहा, कि मैंने तुम्हें जान-बूझकर कुँए में डाला था। लेकिन सुख है कि तुमने अपने पतिव्रत-धर्म की शक्ति से उसे स्वर्ग बना लिया।

करिश्मा वह दिखाया अक़्ल को हैरान कर डाला।
जो पेचीदा था, मुश्किल था उसे आसान कर डाला॥
सिखाया सबक़, सीने में उतर बैठा जो दम-भर में।
पिता को हक़ है देदे लाड़ली को चाहे जिस घर में॥
अगर सच पूछती हो तो कहूँगा इसको लाखों में।
तुम्हीं ने रोशनी डाली है मेरी अन्धी-आँखों में॥

मैना—(प्रेम के साथ) पिताजी! यह सब आपके आशीर्वाद का परिणाम है।

पहुपाल—(दीनता से) देवी, धन्य हो तुम! बहुत कष्ट दिया है—मैंने; क्षमा करो मेरे अपराध।

मैना—(गंभीर होकर) नहीं, नहीं पिताजी! आपने कोई अपराध नहीं किया। जो कुछ हुआ है, सब मेरे भाग्य के इशारे पर हुआ है।

पिता का दिल ही गर तक़लीफ देगा नौनिहालों को।
मिलेगी परवरिश फिर किस जगह मासूम-लालों को॥

पहुपाल—(दीन होकर) हारा, सब तरह हारा! मैना सुन्दरी! मैं हारा, तुम्हें विजय मिली—लेकिन आज यह मैं मानता हूँ कि सचमुच भाग्य एक चीज़ होती है।

न हर्गिज़ ठेल सकती भाग्य का इन्सान की ताक़त।
कुचल जाती है अपने आप ही अभिमान की ताक़त॥

श्रीपाल—(मृदु-स्वर में) दुखित न होइए-उज्जयिनी पति! आपने जहाँ अपनी कन्या पर अत्याचार किया है, वहाँ एक भाग्य के सताए हुए प्राणी पर उपकार भी किया है।

रोशन किया है उसके महल को चिराग़ से।
बेशक बचा लिया उसे, आहों की आग से॥

पहुपाल—(शर्मिन्दगी से) बहुत शर्मिन्दा हूँ—चम्पापुर-नरेश।

नज़र उठती नहीं मेरी, गुनाहों ने दबाया है।
किया जैसा भी कुछ था, सामने वह आज आया है॥
समझदारी है पहले सोच लेना काम करने के।
ये नादानी है रोना बाद में कुछ कर गुज़रने के॥

श्रीपाल—(प्रेम से) उज्जयिनी-पति ! क्यों लज्जित हो रहे हैं ? आपने एक दुःखो व्यक्ति का उपकार कर कुछ बुरा नहीं किया। अपनी प्यारी कन्या को परोपकार की वेदी पर चढ़ाते हुए त्याग का आदर्श ही दिखाया है।
ये मानव धर्म है, आदर्श है, शृङ्गार मानव का।
करे उपकार मानव प्रेम से उपकार मानव का॥

पहुपाल—(स्वगत) काश ! उपकार की दृष्टि से ही मैना का भाग्य तुम्हारे ख़ून-पीव भरे हाथों में सौंपा होता। (प्रगट) दिग्विजयी-सम्राट् ! क्या मैं यह आशा कर सकता हूँ कि आप मेरा आथित्य स्वीकार करेंगे ?

श्रीपाल—(प्रसन्न वदन से) आथित्य ? इतने दिनों आप ही के देश में तो रहा हूँ, आपके सत्कार ने ही तो मेरे चारों तरफ़ स्वर्ग खड़े किए हैं। यह सब वैभव किसकी बदौलत है ? उज्जयिनी पालक ! सचाई यह है कि हम अब अपनी राजधानी—चम्पापुर—लौट जाने का इरादा कर चुके हैं। स्वदेश की याद ने एक क्षण ठहरना भी मुश्किल कर दिया है। कूँच का बिगुल बजने के पहले आपसे मिलने की लालसा थी—वह पूर्ण हो रही है।

पहुपाल—(एक दम से) यह तो और भी दुःखद-सम्वाद रहा।

श्रीपाल—(गंभीरता से) मजबूरी है कि जन्म-भूमि नहीं छोड़ी जाती।

जन्म-भूमि की प्यारी मिट्टी, जन्म भूमि का प्यारा जल।
तभी छूटता, छा जाते हैं, जब मुसीबतों के बादल॥

(नैपथ्य से वाद्य-ध्वनि और जयघोष सुनाई देता है। क्रमशः आवाज़ पास आती मालूम देती है। श्रीपाल नैपथ्य की ओर देखते हैं)

श्रीपाल—(प्रसन्न वदन से) मालूम होता है, कि वह आनन्द का समय बहुत पास आ चुका है, जिसके लिए एक अर्से से मेरा हृदय अधीर हो रहा था। वह देखो—कितना उत्सव, कितना उल्लास मनाया जा रहा है।

डूबे हैं सब ख़ुशी में, संगीत भर रहा है।
गोया जमीं के ऊपर जन्नत उतर रहा है॥

मैना—(दीनता-संकोच पूर्वक)—मानिए—मानिए सम्राट्! मैं इस योग्य नहीं हूँ, कि पटरानी का पद मुझे दिया जाय! यह सन्मान मेरी किसी दूसरी बहिन को सौंपिए।

रयन मंजूषा—(शीघ्रता पूर्वक) बहिन, मैना सुन्दरी! तुमने जो कुछ किया है, उसे देखते हुए, हम में कोई भी इस महान्-पद की अधिकारिणी नहीं है।

इस डूबती किश्ती की मददगार तुम्हीं हो।
कहने दो मुझे हर तरह हक़दार तुम्हीं हो॥

(दासी का 'सत्कार-थाल' लिए हुए प्रवेश, जिसमें मुकुट, केसरिया रंग का दुपट्टा, और कुछ फूलों की कलियाँ रखी हैं।)

दासी—(उतंग-स्वर में) महारानी मैना सुन्दरी की, जय हो।

श्रीपाल—(उत्सुकता के साथ) लाओ, इधर लाओ—सत्कार-थाल!

दिखाने दो क्रिया से भी हृदय के प्यार की रेखा।
प्रगट होने दो इस सत्कार से आभार की रेखा॥

(महाराज श्रीपाल अपने हाथ से मैना सुन्दरी के सिर पर मुकुट रखते हैं, केसरिया दुपट्टा कन्धे पर डालते हैं। रयन मंजूषा, गुणमाला वगैरह फूलों की कलियाँ बखेरती हैं। नैपथ्य से वाद्य-ध्वनि आती है।)

पहुपाल—(प्रफुल्लित होकर (स्वगत) धन्य हो भगवान् !
पतित पावन ! अमंगल को भी तुम मंगल बनाते हो ।
यही कारण है जो दुनिया में मंगलमय कहाते हो ।।

(पर्दा गिरता है)

चौथा दृश्य

[स्थान—चम्पापुर का राज-दर्बार ! सिंहासन पर महाराज वीरदमन विराजे हैं; अगल-बगल प्रधान सचिव । इसी समय प्रहरी प्रवेश करता है ।]

प्रहरी—(अभिवादन के साथ) महाराज की जय हो !

वीरदमन—कहो, क्या समाचार हैं ?

प्रहरी—(झुककर) सम्राट् श्रीपाल का दूत प्रवेश की आज्ञा चाहता है ।

वीर०—(अचरज से) क्या कहा, सम्राट् श्रीपाल ? क्या कोढ़ी श्रीपाल वापस लौट आया है ? ताज्जुब···(प्रहरी की ओर) आने दो उसे । मालूम होना चाहिए—क्या सन्देश लाया है ?

प्रहरी—जो आज्ञा ! (सिर नवाकर जाता है ।)

मंत्री—(वीरदमन से) निस्सन्देह श्रीपाल वापस लौट आए हैं, लेकिन कोढ़ी के रूप में नहीं, बलवान दिग्विजयी-नरेश के रूप में पधारे हैं । एक बहुत बड़ी शक्तिशाली फौज, अनेक अधीनता स्वीकार करने वाले नरेश उनके साथ में हैं ।

वीर०—(ताज्जुब से) ऐसा ?···

दूत—(प्रवेशकर, अभिवादन के साथ) सिंहासनासीन चम्पापुर नरेश को प्रणाम ! मैं चम्पापुर राज-मुकुट के अधिकारी

सम्राट् श्रीपाल का दूत हूँ—और महाराज का एक आवश्यक सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ।

वीर०—(जिज्ञासा से) क्या सन्देश लाए हो—राज-दूत ?

दूत—(स्पष्ट रूप से) अपार वैभव और शक्ति के स्वामी सम्राट् श्रीपाल ने आज्ञा दी है—कि प्रसन्नता पूर्वक मेरा राज्य मुझे लौटा दो। जो अमानतन रूप में रोग-शान्ति तक के लिए आपको सौंपा गया था।

वीर०—(गंभीर होकर) राज्य…?

दूत—(दृढ़ता के साथ) हाँ, वे अपना राज्य चाहते है। चाहते हैं कि आप उनसे आकर मिलें, सरलता का व्यवहार काम में लाएँ।

न आने दें मुहब्बत, न्याय के सम्बन्ध में स्वामी।
न होने दें जहाँ तक हो सके दुनिया में बदनामी॥

वीर०—(तनिक तेज़ी से) राज्य के अन्धे ! विवेक को खो बैठे। नहीं जानते—राज्य और स्त्री माँगने से नहीं, बाहुबल से प्राप्त की जाती है।…राज्य ? राज्य ऐसी चीज़ नहीं है, कि हँसते-हँसते किसी को दे दी जाय। ख़ून, पसीना आँसू सभी कुछ बहाकर, इसे पाया जाता है। असहयोग और सत्याग्रह से राज्य नहीं मिला करते, ख़ून की नदियाँ बहानी पड़ती है।—

चमकती हैं तलवारें वीरों के कर मे,
हजारों ही बनते हैं यमपुर के राही।
उठाकर बड़ी मुश्किलें—फूँक पाते—
विजय के बिगुल को बहादुर सिपाही॥

दूत—(गंभीर-स्वर में) प्रजापति ! इन्साफ की ओर नज़र डालिए। सल्तनत के मिठास पर समझदारी की बलि न चढ़ाइए। राज्य एक बड़ी चीज़ ज़रूर है, लेकिन

ईमानदारी, इन्साफ़ और ज़ुबान की क़ीमत से ज्यादह मूल्यवान् नहीं है।…भलाई और न्याय का रास्ता यही है कि सम्राट् श्रीपाल की अमानत में ख़यानत का इरादा छोड़ दें। अगर यह नेक सलाह ठुकराई गई—तो इसका मतलब होगा—युद्ध ! रक्तपात !! भतीजे के द्वारा चाचा का अपमान।

समय मत लाइए ऐसा, कि जो इतिहास काला हो।
अनादर प्रेम का हो, या—कलह का बोल-बाला हो॥

वीर०—(ज़रा क्रोध के साथ) कलह ? किसे कहते हैं कलह ? राज्य के लिए बाप, बेटे का क़त्ल कर देता है, भाई, भाई को दुश्मनी की नज़र से देखता है। कौन नहीं जानता—कि सल्तनत के लिए ही महाभारत का समर हुआ था। संग्राम, विजय पराजय की कसौटी है। सत्कार—तिरस्कार का अखाड़ा है।

है जिसके बाजुओं में बल, उसे डर क्या डरायेगा।
डरेगा, थरथरायेगा, स्वयम् ही भाग जाएगा॥

दूत—(गंभीर होकर) प्रजापति ! फिर सोचिए, एक बार। सम्राट् श्रीपाल जितने ही शक्तिशाली हैं, उतने ही न्यायवान्, प्रेमी-हृदय और नम्र हैं। आप अगर स्वागत करेंगे, तो निस्सन्देह वह पिता की तरह ही आपको आदर देंगे।

वीर०—(उपेक्षा से) और अगर मैं ऐसा नहीं करूँगा तो ?

दूत—(गंभीर-स्वर में) तो वह समय टाले नहीं टल सकेगा, प्रताप शाली महाराज श्रीपाल की अजेय शक्ति द्वारा आपको पराजय का स्वाद चखना पड़े। ज़लालत उठानी पड़े।

वीर०—(क्रोध से) चुप रहो—वाचल दूत ! नहीं जानता, कि किसके सामने तू श्रीपाल को शक्तिशाली बता रहा है ?

मैंने श्रीपाल को गोद खिलाया है, मैं उसे और उसकी शक्ति को ख़ूब जानता हूँ। कल का छोकरा……! मेरा मुक़ाबिला कर सकेगा ?

अगर वह सामने आने की नादानी दिखायेगा।
तो अपनी जान मेरे हाथ से नाहक़ गँवायेगा॥
किसे कहते हैं रण, यह सबक़ मैं उसको सिखादूँगा।
मैं करके बाण-वर्षा को समर में प्रलय ढादूँगा॥
मसल दूँगा मैं मच्छर की तरह, जीवित न छोड़ूँगा।
पकड़ कर जंग के मैदान में गर्दन मरोड़ूँगा॥

दूत—(सरलता से) शान्त ! शान्त रहिए—प्रजापति ! चित्राम की मूर्ति के आगे वीरता के गीत न गाइए ! समय वीरता को विजय का उपहार देकर स्वयं ही प्रगट करेगा।

चार-दाने ही बता देते हैं सबकी बानगी।
जंग कर देती है ज़ाहिर बुज़ दिली मर्दानगी॥

लेकिन अपनी शक्ति आजमाइश के पहले, सम्राट् श्रीपाल की शक्ति का ठीक-ठीक अन्दाज़ा लगा लीजिए—महाराज ! मुमकिन है, शक्ति का ग़लत अन्दाज़ा धोखा दे जाय, और आपको पराजित होना पड़े।

वीर०—(क्रोध-पूर्वक) पराजित…? मैं…? मूर्ख राज-दूत ! विवेक से काम ले। होश सँभाल कर बातें कर, कल जिस कोढ़ी को चम्पापुर से निकाल बाहर किया था, आज वह शक्तिशाली बनकर सामना करने की हिम्मत दिखाने चला है ? मालूम होता है—काल-चक्र उसके सिर पर सवार है। जलती-ज्वाला की चमक पर, पतंगे को मरने की ख़्वाहिश हुई है।

मैं उसकी सारी ताक़त को जलाकर ख़ाक कर दूँगा।
बक़ाया है, उसे तलवार से बेबाक़ कर दूँगा॥

शरों से सिर उड़ा दूँगा, कलेजा चाक़ कर दूँगा।
उठाकर उसकी हस्ती को जमीं को पाक़ कर दूँगा।।

दूत—(तेज़-स्वर में) घमंड ? इतना घमंड ? इतना अहंकार ? महाराज, अभिमान की चोटी पर खड़े होकर अपने विनाश का दर्वाज़ा न खोलिए। दुनियाँ में किसी का अभिमान नहीं रहा।

नशा .खुदी का बुरा है, कहते—
पुराण सारे ही दृढ़-स्वरों में !
किया है जिसने .गुरूर, आख़िर—
गिरा है दुनिया की ठोकरों में !!
मिली भरत की ज़मीं में इज्ज़त—
बची न रावण की जान बाक़ी।
ज़रा ग़ौर से सोच कर देखिए तो—
रहा है किसका गुमान बाक़ी ?

वीर०—(क्रोध में) बाचाल-दूत ! ज़हर उगलने वाली .ज़ुबान बन्द कर ! मैं घमण्ड नहीं कर रहा, आने वाले उस खौफनाक वक्त से आगाह कर रहा हूँ, जो श्रीपाल की ना-समझ कार-गुज़ारियों से जल्दी ही आ सकता है।

दूत—(निर्भय-स्वर में) बिल्कुल ग़लत ! अपनी अमानत को वापस माँगना, महाराज श्रीपाल की ना-ससझ-चेष्टा नहीं, आपकी ईमानदारी का इम्तिहान है। पराये-सम्राज्य का लोभ अगर विश्वासघात के रास्ते पर आपको ले जाएगा, तो अवश्य ही यह राज-मुकुट आपको अपमान की आग में जलाता हुआ; अपने अधिकारी प्रभु के सिर पर विराजेगा।

वीर०—(ज़ोर से) खामोश !

दूत—(सरलता से) विधाता का विधान अमिट है ! रक्त पात हुए बिना शान्ति नहीं होगी। लाभदायक बातें भी जहाँ काल-

कूट की तरह कड़ुवी बताई जाती हैं, सुनने के लिए तैयार नहीं हुआ जाता—ऐसे मरीज़ को मौत ही गले लगाती रही है। अन्तिम चेतावनी है, एक ही उपाय है—इज्ज़त और ईमान चाहते हैं, तो सम्राट् श्रीपाल के पैरों में गिरिए—नहीं, यह बेईमानी की नीयत दुनिया की नज़रों में गिराकर रहेगी।

वीर०—(तलवार खींचकर) दूर हो मेरे सामने से। नहीं, अभी ज़मीन पर लाश तड़पती नज़र आएगी।

प्रधान सचिव—(तलवार थामते हुए) क्रोध में राजनीति न भूलिए महाराज! इस दीन, ग़ुलाम को मारने से कोई लाभ नहीं। यह राजदूत मुट्ठी भर अन्न के लिए हमेशा से इसी तरह निडर होकर स्वामी का सन्देश सुनाते आए हैं। यह अपनी ओर से नहीं, फूँक से बजने वाले बाजे की तरह बोल रहा है। राजनीति यह है, कि इसे दान देकर बिदा किया जाय, ताकि जहाँ जाए वहाँ गुण गाये।

वीर०—(शान्त होकर) जो, ठीक हो करो!

प्रधान सचिव—(धन देकर) जाओ, स्वामी से कहो, कि महाराज वीर दमन सिर नहीं झुकाएँगे, हाथ में तलवार लेंगे। मुकुट नहीं, पराजय देना चाहते हैं।

दूत—जो आज्ञा! (दूत जाता है!)

(पर्दा गिरता है)

पाचवाँ दृश्य

[स्थान—चम्पापुर का उद्यान ! फौजी पड़ाव के एक सुन्दर शिविर में महाराज श्रीपाल अपने प्रधान मंत्रियों सहित विराजे हुए हैं । हल्का-हल्का रण-क्षेत्र का शब्द सुनाई दे रहा है । नैपथ्य में रण के बाजों, पटाखों के चलने की आवाज़ और मनुष्यों के कोलाहल की ध्वनि आ रही है । लग रहा है कि युद्ध ख़ूब तेज़ी के साथ हो रहा है । महाराज श्रीपाल चिन्ताव्यस्त और किंचित दुखित प्रतीत हो रहे हैं ।]

श्रीपाल—(वेदना के स्वर में) दुर्भाग्य ! भतीजे को चाचा की बद-नीयती के विरुद्ध युद्ध करना पड़ रहा है । ख़ून की नदियाँ बहानी पड़ रही हैं । भाग्य ! कहो, इन हाथों से, शरीर से और क्या-क्या काम लेने का इरादा कर रखा है ?

पिता की भाँति जिनको आज तक देखा था आदर में ।
उन्हीं को देखना रण-भूमि में है आज खंजर में ।।

शोक ! शोक !! भाग्य ! यह कैसे विनाश की बुनियाद तूने डाल दी है, कि पिता-पुत्र के प्यार में ख़ून के छींटे लग रहे हैं । राज्य-लालच ने समझदार चाचाजी की 'समझ' को अन्याय की तलहटी में ढकेल कर, मुझे मातृभूमि के लिए तलवार उठाने को विवश किया है ।

'समझ' की नाव ख़ुदगर्ज़ी के दरिया में ही डूबी है ।
पिता बेटे को ले तलवार, यह दौलत की ख़ूबी है ।।

प्रहरी—(प्रवेश कर, अभिवादन पूर्वक) सम्राट् की विजय हो ।

श्रीपाल—(उत्सुकता के साथ) कहो, समर-भूमि का क्या समाचार है ?

प्रहरी—(सिर झुका कर) सम्राट् ! दोनों सेनाओं में ख़ून की प्यास पनप रही है । भीषण-नर-संहार हो रहा है ।

विजय दोनों की ओर समान रूप से मुस्करा रही है।
हाथी, घोड़े, सैनिक सभी ख़ून की होली खेल-खेल कर,
अपने स्वामी की विजय में विश्वास कर रहे हैं।

श्रीपाल—(चिन्तित रूप से) क्या चाचा जी सैन्य संचालन कर रहे हैं?

प्रहरी—(दृढ़ता से) नहीं!

श्रीपाल—(हर्षित होकर) ओफ़्, मेरे चम्पापुर के सिपाहियो! सचमुच तुम बहादुर हो। तुम्हारी वीरता से ही चम्पापुर ने नाम पाया है।

प्रहरी—(संकोचपूर्ण; अभिवादन पूर्वक) प्रधान मन्त्री महोदय! मैं आपके लिए एक सम्वाद लाया हूँ, और वह यह है कि महाराज वीर दमन के प्रधान मन्त्री आपसे भेंट करना चाहते हैं।

श्रीपाल—(ताज्जुब से) क्या चाचाजी के मन्त्री? आने दो उन्हें। अवश्य वह रण-क्षेत्र के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण परामर्श करेंगे।

प्रहरी—जो. हुक्म! (जाता है)

प्रधान मंत्री—(दृढ़-स्वर में) निश्चय ही उनके आने से युद्ध-नीति बदल जाएगी। कदाचित राजा ने ही विवेक खोया है, मन्त्रियों की बुद्धि पर प्रभाव नहीं पड़ा। हो सकता है, इस अन्याय-युद्ध के प्रारम्भ में उन्होंने विवेक की प्रार्थना की हो।

श्रीपाल—(दुखित-स्वर में) जानते हो प्रधान मन्त्री! मुझे इस युद्ध का कितना दुख है, कि मैं पिता-तुल्य चाचाजी के विरुद्ध तलवार उठा रहा हूँ। अगर ऐसा न होता, तो रणाँगण का रुख ही दूसरा होता। इससे बहुत पहले ही विजय को मेरे गले में वरमाला डालनी होती।

प्रधान—(दृढ़ता से) बेशक ! इस परखे हुए-सत्य में ज़रा भी सन्देह नहीं।

मिटा सकते ख़ुदी को, आजिज़ी की अपनी आदत से।
बुझा सकते हो ज्वाला जंग को जिस्मानी ताक़त से॥

(इसी समय वीर दमन के प्रधान-मन्त्री का प्रवेश)

वीर० प्र० मंत्री—(सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए) सम्राट् श्रीपाल के चरण-कमलों को प्रणाम ! मैं बग़ैर अपने स्वामी की अनुमति लिए, इसलिए आया हूँ कि यह व्यर्थ का रक्तपात बन्द हो जाय, इस राक्षसी नर-संहार की लीला का अन्त हो ! (प्रधान मन्त्री की ओर) आप महसूस करते होंगे, कि प्रधान मन्त्री के कन्धों पर राज्य की बहुत बड़ी जिम्मेदारी-एक बहुत भारी बोझ होता है। साम्राज्य के उत्थान-पतन की कीर्ति, अकीर्ति सब उसी पर मुनहसिर होती है। और वह उससे ज़ुदा नहीं हो सकता।

प्रधान-मंत्री—बेशक ! राज्य-हित की सारी चिन्ताएँ उसी के मस्तक में विश्राम करती हैं। सचिव की योग्यता से ही मौत के मुँह में पड़े हुए साम्राज्य, दुनिया में फले-फूले हैं। हाँ, मैं यह जानना चाहता हूँ कि किस शर्त पर आप इस ख़ूनी-खिलवाड़ को रोकने की योजना पेश कर रहे हैं ?

वीर० के प्र० मंत्री—मैं दर्बार की ओर से सुलह की शर्त लेकर नहीं, प्रधान मंत्री की हैसियत से एक सुझाव पेश करने आया हूँ, और वह यह कि दोनों युद्ध-संचालक-नरेश स्वयं अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा समर भूमि में विजय-पराजय का फ़ैसला कर लें तो यह घातक-युद्ध की ज्वाला शान्त हो सकती है। अनेक

स्त्रियों का सुहाग, हजारों बच्चों का पितृ-स्नेह क़ायम रखा जा सकता है।

प्रधान—निस्सन्देह सूझ अच्छी है। लेकिन क्या आपके महाराज इसे स्वीकार करेंगे?

वीर० प्र० मंत्री—अवश्य! क्योंकि उन्हें अपने पौरुष पर यक़ीन है। और मैं जानता हूँ—कि सम्राट् श्रीपाल भी उन से कुछ कम शक्तिशाली नहीं हैं। दो बड़ी शक्तियों को आपस में निपट लेने का अवसर देने के बजाय हजारों ग़रीबों का ख़ून बहाना समझदारी नहीं है।

प्रधान—मैं आपके सुझाव का आदर करता हूँ। साथ ही अपने महाराज की ओर से यह पूछना चाहता हूँ क्या यह मुमकिन नहीं है कि आपके महाराज बग़ैर पराजय के साम्राज्य का लाभ छोड़ सकें।

वी० प्र० मंत्री—हर्गिज़ नहीं! और इसलिए नहीं, कि हमें विजय में पूर्ण विश्वास है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं हुआ कि आप क्या चाहते हैं?—सुलह?

प्रधान मंत्री—प्रधान मंत्री महोदय! सुलह कोई बुरी चीज़ नहीं है। मैं समझता हूँ - युद्ध से वह कहीं अच्छी है। और हम उसे ही चाहते हैं। इसलिए नहीं कि विजय से हमारा विश्वास उठ गया या हम अपने को अशक्त मान रहे हैं। वरन् इसलिए कि साम्राट् श्रीपाल के विवेकी-हृदय में अपने बड़ों के लिए अभी सन्मान-भाव हैं। वे मुक़ाबिले में आना पसन्द नहीं कर रहे। यही कारण है कि हमारा सैन्य-संचालन शिथिल हो रहा है। और आपको अपनी विजय में विश्वास करने का मौक़ा मिल रहा है।

श्रीपाल—(स्वगत) भाग्य! क्या अभी मेरी परीक्षा पूर्ण नहीं

हुई ? बोलो—क्या भतीजे से चाचाजी की अवज्ञा करा कर ही सन्तोष लोगे ? चारों ओर जाल बखेर रखा है, कहीं से भागने की गुंजाइश नहीं। तुम्हारी मर्जी। जो चाहो करा लो। (प्रगट) प्रधान मंत्री महोदय ! मैं आपके सुझाव को स्वीकार करता हूँ—कल का युद्ध, निर्णायक-युद्ध होगा। पेट के लिए लड़ने वालों की लड़ाई नहीं, चाचा और भतीजे का ऐतिहासिक युद्ध होगा। जाइए—इस अमानुषिक नर-संहार को रोकने का ऐलान कीजिए। (अपने मंत्री से) मंत्रीजी ! आप भी इस आज्ञा पर ध्यान दीजिए।

दोनों प्र० मंत्री—(सिर नवाकर) बहुत ख़ूब !

(पर्दा गिरता है।)

छटवाँ दृश्य

[स्थान—समर-भूमि ! अनेक सैनिक इधर-उधर खड़े हैं। दोनों पक्ष के व्यक्ति बराबर हैं। एक ओर सम्राट् श्रीपाल और उनके प्रधान मंत्री, दूसरी ओर महाराज वीरदमन और उनके प्रधान मंत्री क्षत्रीय-वेष में तामसी मुखाकृति पूर्ण खड़े हैं। शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हैं।]

श्रीपाल—(भद्रता पूर्वक) चाचाजी ! एक बार फिर प्रार्थना कर रहा हूँ—मेरे राज्य को वापस लौटा दीजिए, और फिर उसी प्रतिष्ठा के साथ, जीवन के शेष दिन बिताइए। मैं इतना ही चाहता हूँ, कि आप अन्याय के रास्ते से दूर हट जाँय। इक्ष्वाकु-वंश की पवित्र कीर्ति में कालिख न लगाएँ।

वीर०—(क्रोध पूर्ण-स्वर में) ओ, नादान बच्चे ! समर-भूमि में चाचा और भतीजे का नाता निकाल कर तू अपने

प्राणों की भीख माँगना चाहता है, तो इस ख़याल को भूल जा। मेरे हाथ से अब हर्गिज़ तेरा छुटकारा नहीं है। यह वह भूमि है, जहाँ कोई नाता-रिश्ता बाक़ी नहीं रहता।

यहाँ पर कौन किसका पुत्र, किसका कौन भाई है।
यहाँ यह देखना है किसकी किससे दुश्मनाई है॥
यह वह कुंजी है जिससे रास्ता आगे का खुलता है।
यह वह काँटा है जिस पै बल जवाँमर्दों का तुलता है॥

श्रीपाल—(क्रोध-पूर्ण) यह घमण्ड? पराये राज्य पर इतना गर्व? चाचाजी! स्वार्थ में अन्धे हो रहे हो, नादान हो रहे हो! साँप से दोस्ती और पर-स्त्री से प्रेम कर किसने धोखा नहीं खाया? (प्रेम के साथ) चाचाजी! समझ की रोशनी में देखिए—मैं प्राणों की भीख नहीं माँग रहा, आपकी बे-इज़्ज़ती का वक़्त टाल रहा हूँ। अन्तिम चेष्टा कर रहा हूँ, कि भतीजे के द्वारा चाचा का अनादर न हो।

नहीं है होशियारी यह कि जो अपमान लेते हो।
पराई सल्तनत पर व्यर्थ में क्यों जान देते हो?

वीर०—(चिढ़ कर, बाण धनुष पर चढ़ाते हुए) बस, रहने दे समझदारी! बहुत सुन लिया तेरा व्याख्यान। याद रख, इन रँगी हुई बातों की चमक में कायरता नहीं छिप सकती। अगर बल रखता है, तो वार सँभाल।

(बाण छोड़ते हैं।)

श्रीपाल—(स्वगत) भाग्य! अटल हो तुम। (प्रगट) सँभालिए-चाचाजी!

(दोनों में बाण-युद्ध होता है। नैपथ्य में रण-वाद्य बजते रहते हैं, कुछ देर बाद।)

वीर०—(स्वगत) सचमुच, श्रीपाल कुशल योद्धा है। मेरे सभी प्रहार व्यर्थ हो रहे हैं।

(बाण-युद्ध बन्द हो जाता है।)

श्रीपाल—सहारा! इन बाणों का सहारा भी छोड़ दीजिए चाचाजी! आइए—शरीर युद्ध से ही हम अपने भाग्य का फ़ैसला कर लें।

वीर०—(घबराये हुए ढंग से) हाँ, हाँ यही ठीक होगा।

(दोनों शस्त्रास्त्र उतार कर दूर फेंक देते हैं। फिर बाहु स्फोटन करते हैं। और मल्ल-युद्ध प्रारम्भ होता है, नैपथ्य-वाद्य बजता रहता है। दोनों पक्ष के लोग विष्मय के साथ देखते हैं। कुछ देर के बाद महाराज श्रीपाल वीरदमन को उठाकर ज़मीन पर पटकना चाहते हैं। सब भयभीत हो देखने लगते हैं। किन्तु श्रीपाल स्वयं ही बुद्धि से काम लेते हैं, वीरदमन को धीरे-धीरे ज़मीन पर खड़ा कर देते हैं। वीरदमन लज्जित हो ज़मीन की ओर नज़र डालते हैं—दोनों पक्ष के लोग—'सम्राट् श्रीपाल की जय!" चिल्लाते हैं। श्रीपाल नम्रता पूर्वक एक ओर खड़े रहते हैं। वीरदमन अपने सिर से मुकुट उतार कर श्रीपाल की ओर बढ़ते हैं—निष्तेज मुख।)

वीर०—(मुकुट श्रीपाल को पहिनाते हुए) वीरों की शोभा, विजय का उपहार—यह लो, पुत्र! मुझे अपनी पराजय का दुख नहीं, पुत्र के विजय की ख़ुशी है। इक्ष्वाकु-वंश के कुल दीपक। दिनों दिन भाग्योदय हो—तुम्हारा। चम्पापुर का राज्य सँभालो, मुझे आत्म-राज्य में जाने की इजाज़त दो—पुत्र!

सभी उपस्थित जन—(ज़ोर से) चम्पापुर नरेश, सम्राट् श्रीपाल की जय!

(आकाश मे पुष्प वर्षा और जय ध्वनि होती है।)

: समाप्त :

जैन-समाज में

अत्यधिक आदर पाने वाली

श्री 'भगवत्' जैन की प्रकाशित पुस्तकें

१	उस दिन [अतीत की कहानियाँ]	१)
२	चाँदनी [अन्तरंग में आलोक भरने वाली कविताएँ]	॥=)
३	संन्यासी [राष्ट्रीय-नाटक]	॥=)
४	समाज की आग [सामाजिक नाटक] (प्रथम संस्करण समाप्त)	॥)
५	घूँघट [हास्य पूर्ण-प्रहसन]	।)
६	घर वाली [सामाजिक व्यंग काव्य] (प्रथम संस्करण समाप्त)	।)
७	रस-भरी [चार कहानियाँ]	≡)
८	आत्म तेज [स्वामी समन्त भद्र जीवन-कथा]	=)
९	त्रिशलानन्दन [गीत] (समाप्त)	)।।।
१०	फलफूल ,, ,,	)॥
११	जयमहावीर [कविताएँ] ,,	)॥
१२	झनकार [गीत] ,,	)॥
१३	उपवन ,, ,,	)।
१४	भाग्य [पौराणिक-नाटक] (नज़र के आगे)	१।)

व्यवस्थापक

श्री भगवत-भवन ऐत्मादपुर (आगरा)

समाज के श्रीमानों-धीमानों की दृष्टि में श्री 'भगवत्' जैन की रचनाएँ

देश प्रसिद्ध धनकुबेर दानवीर साहु शान्ति प्रसाद जी डालमिया नगर (बिहार) '…आपकी अनेकों सुन्दर रचनाओं के लिए बधाई। मुझे आपकी साहित्यक उन्नति को देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती है। आशा है आप इसी प्रकार से उन्नति करते रहेंगे। अपनी साहित्यिक प्रगति से समय-समय पर सूचित करते रहा करें।'

प्रसिद्ध व्यवसायी श्रीमान् सेठ नेमीचन्दजी पाँड्या कलकत्ता—'……इसी प्रकार सुन्दर रचनाएँ रचकर जैन-भारती का भण्डार भरने में आपका बड़ा हाथ रहेगा।…अवलोकन किया, बहुत आनन्द आया। भाव-प्रदर्शन आपके द्वारा विशेष रूप से सुन्दर हुए हैं।'

हिन्दी के परखे हुए कलाकार हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय के मालिक पं० नाथूराम जी 'प्रेमी' बम्बई '…इसमें सन्देह नहीं कि जैन-समाज में कहानी-लेखकों का अभाव है और आप उस रिक्त-स्थान को भरने का प्रसंशनीय प्रयत्न कर रहे हैं।…आपकी मैं हृदय से उन्नति चाहता हूँ।'

श्री 'भगवत्' जैन की पुस्तकों पर पत्र-पत्रिकाएँ

"जैन सन्देश" मथुरा—["संन्यासी"] वीर रस पूर्ण है, जो भगवत् जी की सफल लेखनी से लिखा गया है। नाटक सरल आकर्षक और अभिनय के योग्य है। ["आत्मतेज"] सुन्दर सस्ती और सबोपयोगी पुस्तक है। ["उस दिन"] सूझ तीखी, प्रतिभा चुस्त और भाषा सजीव है। और इन सब ने जैन-कथा कोष को आकर्षण की वस्तु बना दिया है। हमारा इसे जैन-कोर्स में रखने का आग्रह है। ["घरवाली"] पुस्तक जहाँ दिलचस्प है वहाँ शिक्षा प्रद है।

"जैन मित्र" सूरत—["उसदिन"] पुस्तक उत्तम उपादेय एवं पठनीय है। भगवत् जी ने इन कहानियों द्वारा जैन साहित्य, जैन धर्म

की रचा तथा जैन समाज की सेवा की है। आप कहानी लिखने चतुर हैं। साधारण घटना को भी, अच्छे ढंग पर सजा देते हैं। भाष शैली नवीन, प्राणवान्; और ओजस्वी है। यह संग्रह जैनेतर समाज लिए भी आदर की चीज़ होगा। ["घरवाली"] पुस्तक अच्छी है उत्तमोत्तम और दिलचस्प छन्द हैं। ["चाँदनी"] 'किसान का घर सजीव रचना है। 'अपना वैभव' बहुत ही सुन्दर है। 'रिक्सावाला खूब चित्रित किया है। इसी प्रकार अन्य रचनाएँ भी सुन्दर हैं।

"सरस्वती" इलाहाबाद—["घूँघट"] नई सभ्यता के प्रे को देखकर हँसी आए बिना नहीं रहती।

"परिवार बन्धु" कुटनी—["घरवाली"] पुस्तक मनोरञ्जन के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी है। ["संन्यासी"] पुस्तक बहुत रोचक और शिक्षाप्रद है। वीर रस को हृदय में भर देने वाली वस्तु है।

"जैन-प्रचारक" दिल्ली—["घरवाली"] 'भगवत्' जी समाज के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। पुस्तक बहुत अच्छी बन पड़ी है।

"खंडेलवाल जैन हितेच्छु" इन्दौर—["घरवाली"] 'बच्चन' जी की 'मधुशाला' के समान सुन्दर समाजिक व्यंग है। इसमें सच्चा चित्रण है, उपदेश है। पुस्तिका हिन्दी साहित्य में भी अपना स्थान ग्रहण कर सकती है। ["संन्यासी"] नाटक सामयिक, उपयोगी राष्ट्रीय और खेले जाने योग्य है। ["उसदिन"] 'भगवत' जी का आधुनिक जैन कवियों और कहानीकारों में अच्छा स्थान है। उन्होंने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा, भावुकता और कल्पना के बल पर लिखा भी खूब है। कविता तो वह बहुत ही अच्छी करते है। ··कहानियाँ अच्छी बन पड़ी हैं।

"वीर" दिल्ली—["चाँदनी"] कवि रूप में 'भगवत'जी से समाज का प्रत्येक वर्ग परिचित है। उनका गद्य जितना सरस होता है। उतना ही सरस पद्य भी है।